THE FAMED ICE FORMATION IN
THE CAVE,REPRESENTING LORD SHIVA

दो शब्द

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते

कवि सम्राट कालिदास के इन मार्मिक शब्दों में जो गम्भीर रहस्य अन्तर्निहित है वह हमें आज यथार्थ रूप में चरितार्थ होता हुआ जैसा दिखाई देता है जब कि गत दो वर्षों से निरन्तर प्रयत्नों द्वारा, अगणित कठिनाइयों, हज़ारों असफलताओं और दिन दिन उत्तरोत्तर आने वाले संघर्षों एवं सामयिक उत्थान और पतनों का सामना करते रहने पर भी आज हम इस पुस्तक को सम्पादित करने में सफल हो कर अपने अन्तःकरणों में एक अवर्णनीय नवीनता का अनुभव कर रहे हैं।

यह पुस्तक निम्न लिखित पांच पुस्तकों पर आधारित है जिन को हमने क्रमशः क—ख—ग—घ और ङ नाम रखे हैं।

क— यह हस्तलिखित पुस्तक प्रस्तुत सम्पादकमण्डल की निजी सम्पत्ति है। इस की लिपि शारदा, पत्रसंख्या 16, प्रति पृष्ठ श्रेणिसंख्या 16, प्रतिश्रेणी अक्षरसंख्या 41 और सन्निवेश $9\frac{1}{2}'' \times 6''$ है। पुस्तक अशुद्ध होते हुए भी शेष चार की अपेक्षा शुद्ध तथा सम्पूर्ण है। यही पुस्तक हमारे इस प्रयत्न का मूलभूत आधार है।

ख— यह हस्तलिखित पुस्तक जम्मू—कश्मीर गवर्नमेंण्ट के रिसर्च पब्लिकेशन कार्यालय की सम्पत्ति है। इस की लिपि शारदा पत्रसंख्या 19, प्रति पृष्ठ श्रेणिसंख्या 12, प्रति श्रेणी अक्षर संख्या 38 और सन्निवेश $9\frac{1}{2}'' \times 7''$ है। प्रथम पुस्तक की अपेक्षा यह पुस्तक अशुद्ध तथा विकल है।

ग— यह हस्तलिखित पुस्तक रैनावारी निवासी पं० गोविन्द भट्ट जी शास्त्री के सुपुत्र पं० त्रिलोकीनाथ जी भट्ट शास्त्री की सम्पत्ति है। इस की लिपि शारदा, पत्रसंख्या (मध्यवर्ती एक लघु पत्र समेत) 11, प्रतिपृष्ठ श्रेणिसंख्या 13—15, प्रति श्रेणी अक्षर

संख्या 47—50 और सन्निवेश 12″×7½″ है। अधिकतर अशुद्ध न होने पर भी हमारे 'क' पुस्तक के समान स्पष्ट तथा समीचीन नहीं है।

घ— यह पुस्तक श्री महादेव जी रीवू भटयार निवासी की सम्पत्ति है परन्तु शोक है कि पुस्तक के स्वामी ने असमय पर ही यह पुस्तक ले कर हमें इस के सन्निवेश आदि का यथार्थरूप देने में अशक्त बनाया।

ङ— यह हस्तलिखित पुस्तक सन्थू निवासी ज्यो० पं० राम जी हुण्डू शास्त्री के सुपुत्र ज्यो० पं० काशीनाथ हुण्डू की सम्पत्ति है। सइ की लिपि पत्राङ्क 7 तक शारदा, पत्राङ्क 12 तक देवनागरी तथा पत्राङ्क 14 तक पुनः शारदा, विभिन्न लेखकों के हाथ से, पत्र संख्या 14, प्रतिपृष्ठ श्रेणी संख्या 19 शारदा, 14 देवनागरी, प्रतिश्रेणी अक्षर संख्या 19 शारदा और 12 देवनागरी, सन्निवेश 8½″×6″ है। पुस्तक अधूरी प्रायः अशुद्ध परन्तु स्थानीय संकेतों के परिचय में सर्वप्रथम।

उपर्युक्त महानुभावों ने पुस्तक देने की उदारता एवं सहानुभूतिशीलता से जो हमारा उपकार किया है उस के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिये बिना हम से रहा नहीं जाता जो कि भूमिका के अन्त में दोहराना हमारा कर्तव्य होगा।

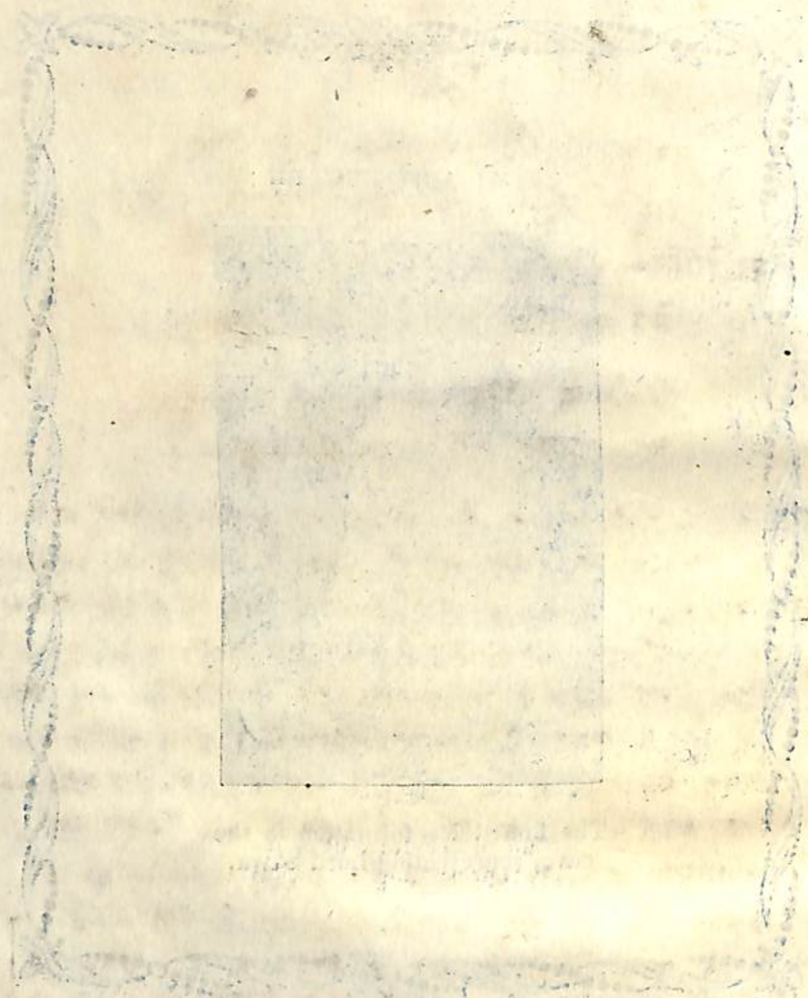
सम्पादक :

ॐ श्री अमरेश्वराय नमः



The famed ice formation in the cave, representing Lord Shiva.

Photo by Imperial Studios, Srinagar.



भूमिका

देवा[1] यत्र कृतास्पदा रुचिधरा विश्वेऽनिलाः कोमलाः
साध्याः हस्तगताः समं वसुगणैर्विद्याधराः मानवाः ।
माहाराजिकवंशजाश्च तुषिता ह्याभासुराः सज्जनाः
सेयं शक्रपुरीमतीत्य न कथं काश्मीरभू राजते ॥'

'त्रैलोक्यां[2] रत्नसूः श्लाध्या तस्यां धनपतेर्हरित् ।
तत्र गौरीगुरुः शैलो यत्तस्मिन्नपि मराडलम् ॥'

यों तो सारे विशाल भारत की प्राकृतिक सुन्दरता पर किसी व्यक्ति-मात्र को तिलमात्र भी सन्देह नहीं है। यहां के जलवायु तथा प्राकृतिक संगठन की अनुपम सुषमा के दर्पण में समग्र विश्व का ही दर्शन मिलता है। उस पर भी इस विशाल देश ने अपने उन्नत मस्तक पर एक सुरुचि-पूर्ण मुकुट धारण किया है जो काश्मीर नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रदेश भारत के उत्तर में विद्यमान है। अपनी विशेषताओं के कारण यह देश इतना आकृष्टिजनक बन गया है कि संसार के अत्यन्त गुप्त कोनों में रहने वाले मानवों की आंखें भी यहां के पग पग के देखने के लिए नितान्त उत्कण्ठित होकर प्रतिसमय लालायित हो उठती हैं। बर्फीली पर्वतमाला की गोदी में यह नवजात शिशु की तरह स्तन्यपान कर रहा है और सौभाग्य की बात है कि आप दूरदेशों से आने के लिए अन्तः से ही प्रेरित होकर स्वयं उस पर्वत-माला के अनुपम दृश्यों को अपने नेत्रों से देख कर परमानन्द अनुभव कर रहे हैं।

प्राचीन ऋषियों अथवा बड़े बड़े आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में भी

---

1. वितस्ता स्तोत्र। 2. कल्हण राजतरङ्गिणी १ - ४४

इस देश की महिमा का वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य के बीसों कवियों ने इस देश में जन्म पाकर उत्कृष्ट कला में सिद्धहस्त होने का परिचय दिया और साथ ही अभिनवगुप्त, सोमानन्द, उत्पल इत्यादि बहुत से दार्शनिकों ने शैवदर्शन जैसा अमूल्य उपहार भारत को ही नहीं अपितु सारे संसार को प्रदान किया। सुव्रत, छविल्लाकर, क्षेमेन्द्र, कल्हण इत्यादि इतिहासकारों ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि यदि भारत के किसी भी प्रान्त में इतिहास लिखने की कला प्राचीन समय में भी जीवित थी वह था केवल कश्मीर देश।

नीलमतपुराण, भृङ्गेशसंहिता, राजतरङ्गिणी इत्यादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर कहा जाता है कि यह देश छः मन्वन्तरों तक चारों ओर पानी से भरा हुआ एक बडा झील था जिस का प्रारम्भिक नाम 'सती सरस्' था। उस समय केवल हरमुख, विष्णुपाद और अमरेश्वर इत्यादि कुछ इनी-गिन चोटियां ही दृष्टिगोचर होती थीं। आदि पुराण में नौबन्धन तीर्थ का महत्त्वपूर्ण वर्णन आता है। यह वही स्थान है जहां पर उन दिनों नौकायें बांधी जाती थीं। आज कल भी यहां की कई पहाड़ी चोटियों के पत्थरों में लगाए हुए लोहे के कडे पाये जाते हैं जिन से यह बात पूर्णतया सिद्ध होती है कि किसी समय यह देश एक बडा सर था जिस में उन चोटियों तक पानी भरा हुआ रहता था। सम्भवतः शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के आठवें अध्याय में वर्णित मनोरवसर्पण नामक स्थान का इस नौबन्धन के साथ कोई सम्बन्ध रहा होगा। अस्तु सातवें मन्वन्तर के प्रारम्भ में कश्यप महर्षि ने इस देश को बसाने की इच्छा से कठिन तपस्या द्वारा ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया। ब्रह्मा जी ने इन्द्र को आज्ञा दी कि वह वराहमूल[1] के निकट पर्वत को वज्र से तोड कर पानी निकलने के लिए मार्ग बना दे। आज्ञा के फल स्वरूप यह देश सर्वथा जलहीन हुआ और इस का नाम 'कश्यपमरु' पड़ गया। इसी शब्द से 'कश्मीरु' 'कश्मीर' तथा 'कशीर' इत्यादि आधुनिक नाम बन गये। इस के अतिरिक्त और कई लेखकों ने 'काश्मीर' शब्द को अन्यथा रूप से सिद्ध करने की क्लिष्ट

---

1. आधुनिक बारामुला।

कल्पनायें भी की हैं परन्तु वह अत्यन्त निर्मूल हैं और ठीक एक झूठी बात को सच बनाने के लिए सौ झूठ कहने वाली बात हो गई है। अस्तु, प्रस्तुत से अप्रस्तुत की ओर जाने के भय से इस वाद को यहां तक ही रहने दें। इस के अनन्तर महर्षि कश्यप ने कठिन तपस्या द्वारा महादेव को संतुष्ट करके इस देश में वितस्ता नदी को प्रवाहित कराया। देश बस गया, खेत लहलहाने लगे और सस्य श्यामला काश्मीर वसुन्धरा ने अनुपम शृंगार धारण किया। परन्तु अब कठिनता केवल इतनी थी कि यहां के मूलनिवासी पिशाच लोग तत्कालीन जनता को अत्यन्त कष्ट देते थे। अब यह क्रम बन गया था कि गर्मियों में वह लोग कालुकार्णव (काश्गर) की और शत्रुओं से जूझने के लिए जाया करते थे और शीतकाल के आते ही उन के भय से और शीत की अत्यधिकता से फिर भारत के अन्य प्रान्तों में भाग जाते थे। लोक कथा के आधार पर उन के यहां वापिस लौटने का दिवस वैशाख कृष्णपक्ष दशमी निश्चित होता था। इस दिन वह लोग वापसी के उपलक्ष में डलगेट के समीप जहां कुछ समय पूर्व चुंगी घर था, एक उत्सव बडे समारोह से मनाते थे। यह दिन आज कल भी कश्मीरी भाषा में 'मुंड दहम' के नाम से प्रसिद्ध है। खेद की बात है कि कश्मीरी जनता अन्य कई उत्सवों के समान ही इस उत्सव को भी भूल बैठी है। वृद्धों का कथन है कि इस दिन लोग अपने पुत्रमित्रों सहित ज्येष्ठेश्वर तथा गोपाद्रि पर चढते थे और धावन या पर्वताधिरोहणादि की प्रतियोगितात्मक क्रीडाओं में सक्रिय भाग लेते थे। शनैः शनैः पिशाचों का ह्रास हुआ तथा यहां के लोगों ने शीत पर नियन्त्रण पाकर निर्भयता से यहां स्थायी निवास आरम्भ किया। इस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नत होता हुआ यह देश विश्व में भूस्वर्ग के नाम से विख्यात हो गया।

कश्मीर तीर्थों का घर :—

भारतीय जनता में प्रचलित तीर्थों अथवा तीर्थ यात्राओं की प्रथा कोई नवीन विषय नहीं प्रत्युत परमपवित्र एवं प्राचीन धर्मग्रन्थ वेदों में भी गंगा, यमुना आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों का उल्लेख मिलता है। इस

में कोई भी सन्देह नहीं कि आर्यावर्त के आर्य लोग प्रकृतिमाता के सौंदर्य के उपासक थे। जहां कहीं उन्हें प्रकृति की सुन्दरता तथा ईश्वर के सृष्टि-विकास की कुतूहलपूर्ण झलक मिली वहां उन्हें साक्षात् ईश्वरत्व का ही आभास तथा ज्ञान प्राप्त हुआ था, अतः हमारे इस विशाल देश में जितनी भी नदियां तथा ऊंची पर्वतमालायें हैं उन के उद्गम स्थानों के समेत वह स्वयं भी तीर्थों की कक्षा में अन्तर्भूत होती हैं।

अस्तु जहां तक देखा जाता है प्रायः कश्मीर देश ही वास्तव में तीर्थों का घर है। यहां पर अनेक तीर्थस्थान हैं जो समस्त भारत भर में अद्वितीय और अनुपम हैं और जनता के आनन्द एवं कौतूहल को बढ़ाने वाले हैं। कल्हण का कथन है:—

"चक्र[1]भृद्विजयेशादि केशवेशानभूषिते
तिलांशोऽपि न यत्रास्ति पृष्ठ्व्यास्तीर्थैर्वहिष्कृत:"

चक्रधर[2], विजयेश्वर[3] विष्णुधाम और शिवधामों से शोभित जिस कश्मीर मण्डल का भूभाग तिलभर भी तीर्थों से रहित नहीं है।

कश्मीर के विभिन्न इतिहासों में अनेक ऐसे तीर्थों का उल्लेख आता है जिन की रूप रेखा आजकल बिल्कुल बदल गई है और फलतः विस्मृति सागर में वे डूब गये हैं। इन्हीं तीर्थों में अत्यन्त प्रसिद्ध, साधकों की कामनाओं के पूरक एवं आधुनिक वैज्ञानिक युग में विस्मयावह—अमरेश्वर, हरमुकुट गंगा, क्रमसर (कौंसरनाग) तथा विष्णुपाद, क्षीरभवानी, मार्तण्ड और शारदाकुण्ड इत्यादि तीर्थ अपनी महत्ता के बल से आज भी जीवित हैं।

जब आद्याशक्ति जगदम्बा ने अपनी स्थायी निवास से इस देश को पवित्र किया तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा अन्य देवताओं ने भी यहां अपना अपना स्थायी निवास निश्चित किया जिस से यह देश तीर्थ-मय ही बन गया। इतिहासकारों ने इस देश के तीर्थों की गणना दो श्लोकों में की है जिस को पढ़ कर यात्रियों को यहां के तीर्थों का कुछ परिचय मिल सकता है।

---

1. रा. त. कल्हण १.३८। 2. वर्तमान चक्रधर। 3. वर्तमान बिजबिहारा।

"चत्वा[1]रिंशदथापि पंच गिरिशाः षष्टिश्च चक्रायुधाः
ब्रह्माणस्त्रय इत्यनादिनिधनाः द्वाविंशतिः शक्तयः ।
नीलादीनि शतानि सप्त फणिनां तीर्थौकसां कोटयो
विख्याताश्च चतुर्दशोत्तमतराः काश्मीर भूमण्डले ॥"

"कश्मीर में ४५ शिवधाम, ६० विष्णुधाम, ३ ब्रह्मा के स्थान तथा २२ शाक्तपीठ, नील आदि ७०० नाग तथा करोड़ों ही तीर्थ विद्यमान हैं परन्तु इन में १४ ही तीर्थ अत्यन्त उत्तम हैं।"

कश्मीर देश प्राचीन काल मे ही शैव सम्प्रदाय तथा शिवोपासकों का घर रहा है। यही कारण है कि यहां के अमरेश्वर, ध्यानेश्वर और स्थूलवाट इत्यादि शिवधाम ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान हैं।

हिमालय के पांच खण्डों में तीर्थों की विभूति :—

पूज्यपाद वेदान्ताचार्य श्री ब्रह्मानन्द तीर्थ जी का कथन है :—

"खण्डाः[2] पञ्च हिमालयस्य कथिता नैपालकूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रुचिरः काश्मीरसंज्ञोऽन्तिमः ॥"

"हिमाचल के नैपाल, कमाऊ, गढवाल, जालन्धर तथा काश्मीर यह पांच खण्ड हैं"।

इन खण्डों में एक एक खण्ड के माहात्म्य का वर्णन करने में अनेकों ग्रन्थों की रचनायें हो चुकी हैं। स्वयं हिमालय पर्वत ही प्रत्येक दिशा में अपनी उत्कृष्टता के कारण भारत के प्रसिद्ध २ कवियों की प्रेरणा का मुख्य स्रोत बन गया है। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में यज्ञादि के साधनभूत, सोमादि लताओं के उत्पत्तिस्थान, भारतवर्ष की पवित्र गंगादि नदियों के उद्गमस्थान, हिमालय की सुन्दरता का भव्य वर्णन किया है। साधारण जीवन में भी हिमगिरि के जंगल, देवदारु की लकड़ी अथवा अन्यान्य उत्तम वस्तुओं की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं।

---

1. रा. त. प्राज्यभट्ट ४७५। 2. अद्वैत मार्तण्ड।

भगवान श्रीकृष्ण को भी मुक्तकण्ठ से कहना पड़ा :—

'स्थावराणां हिमालयः'

भगवान शंकर भी इस के सर्वोच्च शिखर को अपना घर बनाने के लिए बाध्य हो गये। इसी भावना से प्रभावित हो कर अगणित ऋषि लोगों ने इस की गुफाओं में तपस्या कर के अलौकिक सिद्धियां प्राप्त की हैं। इस के ही दक्षिण में केदारनाथ तथा उत्तर में श्री अमरेश्वर है। इन के अतिरिक्त इस पर्वतमाला में और और भी पवित्र तीर्थ हैं। जम्मू की ओर एक परमपावन शाक्तधाम वैष्णवी देवी प्रसिद्ध त्रिकूटा पर्वत के शिखर पर स्थित है। इस पवित्र स्थान से बालगङ्गा का प्रादुर्भाव होता है जिस के दर्शन के लिए हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष यात्री आते रहते हैं। नैपाल में पाशुपतनाथ एवं अन्य कैलाशनाथ, बद्री नारायण, लटायन ज्योत, बिजली महादेव, गंगोत्तरी और जमुनोत्तरी आदि तीर्थों का सन्निवेश इसी हिमगिरि की पर्वतमाला में है। भारतीय आर्य पर्वकालों में इन स्थानों की यात्रा अनिवार्य रूप से करते थे और अब भी करते हैं।

तीर्थ शब्द की व्यापकता :—

विश्व के सभी मत मतान्तरों में अपने अपने सम्प्रदायानुसार तीर्थों तथा तीर्थयात्राओं की प्रथा प्रचलित है। युग युगों से मानवमात्र की प्रवृत्ति इस ओर होने से तीर्थ शब्द में किसी रहस्यभाव का अन्तर्निहित होना तो आवश्यक ही है। वास्तव में यह स्थान प्रकृति के गूढ तत्त्वों की सुगुप्त निधियां हैं जिन से परिचित होना मनुष्य की जन्मसिद्ध प्रेरणा है। अध्यात्मपक्ष का अनुभव तो साधकों के विना और किसी को हो ही नहीं सकता है। उन का भी अपने दृष्टिकोण से तीर्थस्थानों का विभिन्न महत्त्व होना आवश्यक है। हम इतना कहने के बिना भी तो रह नहीं सकते हैं कि तीर्थ शब्द का महान व्यापक अर्थ है जो विशेषतया हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के साथ हज़ारों वर्षों से सम्बन्धित है। भारतीय आर्यों को जिन स्थानों पर परमात्मा परब्रह्म की अष्टमूर्तियों का प्रत्यक्ष आभास प्राप्त हुआ था तो उन्होंने तुरन्त उन को तीर्थ संज्ञा

देकर वहां की यात्राओं का आवागमन से छूटने का मुख्यतम साधन समझा था। कोशादि के आधार पर तीर्थ शब्द का क्या अर्थ है? इस पर कुछ शब्द लिखना भी यहां असंगत न होगा :—

वैजयन्ती कोश में लिखा है :—

१. तीर्थं मन्त्राद्युपाध्याय शास्त्रेष्वम्भसि पावने।
पात्रोपायावतारेषु स्त्रीपुष्पे योनिसंज्ञयोः॥

२. 'घटोऽवतारस्तीर्थोऽस्त्री'

अमरकोश में लिखा है :—

३. 'निपानागमयोस्तीर्थं मृषिजुष्टजलेगुरौ'

व्याकरण के अनुसार प्लवनार्थक अथवा तरणार्थक 'तॄ' धातु से 'थक्' प्रत्यय कर के तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

उपरिलिखित अर्थों के आधार पर परमेश्वर की जलमयी मूर्ति भी तीर्थकोटि में आती है। प्रस्तुत लेख के विषय श्री अमरेश्वर में भी ईश्वर की इसी जलमयी मूर्ति से स्वतः रसलिङ्ग का निर्माण होता है जो जन्द्रमा की कलाओं के साथ ही शुक्लपक्ष पूर्णिमा तक बढ़ता[1] है और कृष्णपक्ष में घटता है। संसार के कई महाव्यक्तियों ने इस तथ्य का अनुभव अनेकों परीक्षणों द्वारा किया है अथवा अनेक शक्तिमान साधकों ने कई महीनों तक गुफा में अकेले रह कर स्वयं अपने नेत्रों से वहां के रहस्यों का साक्षात्कार किया है। इस के अतिरिक्त कश्मीर में और भी ऐसे तीर्थस्थान हैं जहां एक से एक बढ कर रहस्य की बातें हैं जिन का यहां पर वर्णन करना प्रसङ्ग से बाहिर होगा। पाठकों को उन स्थानों से परिचित कराने के लिए हम अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अनुसन्धान कर रहे हैं और आशा है कि हम शीघ्र ही एक बृहत्काय पुस्तक आप की सेवा में प्रस्तुत करने में सफल होंगे। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व

---

1. प्राज्यभट्ट रा. ता. ८४१–२

पुनः इस बात पर प्रकाश डालना उचित होगा कि पाठक महाशय जिस किसी भी तीर्थस्थान पर जाकर प्रकृति के किसी न किसी रहस्यमय तत्त्व का अध्ययन करने का प्रयत्न करें क्योंकि तभी तो तीर्थ की तीर्थता सार्थक हो सकती है।

हमारा ध्येय अमरेश्वर :—

इस परमपावन तीर्थराज का ऐतिहासिक वृत्तान्त जानने के लिये हमने भृङ्गेश संहिता के अन्तर्गत अमरनाथ माहात्म्य के मूल श्लोकों के सहित उन का अविकल अनुवाद भी साथ ही दिया है। ताकि विज्ञ पाठकों को इस यात्रा में आने वाले तीर्थस्थानों का इतिहास तथा स्थानीय प्रदेशों के नाम Topography भी विदित हों जो कि प्राचीन काल से प्रचलित हैं और यहां के स्थानीय माहात्म्यों और लोककथाओं में जीवित हैं। यहां पर हम माहात्म्य के आधार पर इस तीर्थ के आविर्भाव का संकेतमात्र करते हैं जिस से पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो।

सृष्टि के आरम्भ काल से पहले न किसी वस्तु का स्थूल रूप में भाव ही था और न सूक्ष्म रूप में अभाव ही था। उस समय भाव तथा अभाव इन दोनों में से किसी की वैयक्तिक रूप से सत्ता नहीं थी। उस समय यदि कोई सत्ता विद्यमान थी वह केवल परमशिव सत्ता ही थी। उस मूलभूत सत्ता से प्रकृति का आविर्भाव हुआ। उस प्रकृति से 'अहं' की उत्पत्ति हुई। 'अहं' से मृत्यु तथा इन्द्र के सहित सारे देवता प्रादुर्भूत हुए। इस के अतिरिक्त अन्य सभी जीवयोनियां भी उत्पन्न हुई। परन्तु अब एक कठिनाई उत्पन्न हुई कि मृत्यु ने इन्द्रादि देवताओं को भी ग्रस्त करना आरम्भ किया। वह देवता लोग मृत्यु से भयभीत हो कर परमशिव की शरण में आये। भगवान ने उन की स्तुति से प्रसन्न हो अपने सिर पर विद्यमान अमृतमयी चन्द्रकला को उतारा और उस को निचोड कर देवताओं को अमृत पिलाया तथा स्वयं भी उन के प्रेम से द्रवरूप होगया। वह द्रव-रूप शिव ही जम कर लिङ्गरूप बन गया। इस तरह से रसलिङ्ग की उत्पत्ति हुई। अनन्तर भगवान ने देवताओं से कहा कि हे देवताओ!

आज से आप अमर हो गये और साथ ही आज से यह स्थान ही अमरेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा क्योंकि इस स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति-मात्र को अमरत्व प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में यह भी भूलना न होगा कि हिमलिंगों की अर्चना करना तो कश्मीर की प्राचीनतम प्रथा है। कल्हण राजतरङ्गिणी में सान्दीमती नामक राजा का उल्लेख आता है जिस का समय ई० पू० ३४ से ई० १७ तक है। उस ने बनों में हिमलिङ्गों की अर्चना से ही जीवन की सफलता प्राप्त की थी :—

"स्ना[1]तस्य निर्झराम्भोभिः पुष्पलिङ्गार्चनोत्सवैः
राज्ञस्तस्य वनोर्वीषु मासः पुष्पाकरो ययौ।
स चातिरम्यः कश्मीरो देशस्त्रिदिवदुर्लभः
हिमलिंगार्चनैः प्रायाद्वनान्तेषु कृतार्थताम् "

आज कल भी तो इसी हिमलिङ्ग की पूजा अमरेश्वर के स्थान पर होती है तथा कश्मीर के उस प्राचीनतम ध्येय में किसी प्रकार का भेद नहीं आया है।

श्री Walter R. Lawrence महोदय I. C. S. C. I. E ने अपनी प्रसिद्ध कृति The valley of Kashmir नामक पुस्तक के पृष्ठ २६५–६६ पर निम्नलिखित शब्दों में इसी विचार की पुष्टि की है :—

"Purnamashi the full moon of the month Sawan in the day when piligrims must reach the distant cave of Amar Nath and worship the Snow linga which gradually melts away ofter the Purnamashi. Strict Hindus both male and female will discard their clothes and put on shirts of birch-bark before they enter the cave."

---

1. कल्हण रा. त. २–१३७–८

अमरेश्वर की प्रसिद्धि :—

श्रावणी के दिन अमरेश्वर तीर्थ पर यात्रियों की ओर से जो कुछ भी धन अथवा वस्त्रादि उपहार के रूप में चढ़ाया जाता है उस का चौथा हिस्सा वहां के मलिक को दिया जाता है क्योंकि उसी के पूर्वजों ने जनता को यह स्थान दिखाया है। १६५१ में जब प्रस्तुत सम्पादक मण्डल में से एक व्यक्ति को भी अमरेश्वर के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तो उस मलिक ने उसे निम्नलिखित वृत्तान्त सुनाया था :—

"उसने कहा, कि—प्राचीन काल में गडरिये अपने रेवड चराने के लिए दूर पशुचरों (Pasture) में जाते थे। एक बार जब कई गडरियों का समूह पंचतरणी के हरे हरे दूबवाले मैदान के इर्द गिर्द अपना रेवड चराता था तो रेवड में से कई भेड गुम हो गये। उनकी खोज में गडरिये लोग पर्वत के उच्च शिखरों पर चढ गये और अकस्मात् ही उन्हें हिमलिङ्गयुक्त गुफा पर नजर पडी। वहां जाकर जो कुछ उन्होंने देखा उस से अन्य व्यक्तियों को भी परिचित किया। इस प्रकार से यह तीर्थ प्रसिद्ध हो गया।"

इस के अतिरिक्त उसने एक आश्चर्य की बात भी सुनाई जिस का यहां पर पृथक उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। साधारण जनता का इस पर विश्वास हो या न हो परन्तु लोक कथा का भी निजी महत्व होता है।

'खोजने वाले गडरियों में से सर्वप्रथम एक व्यक्ति की दृष्टि इस विशालकाय गुफा पर पड गई। उसने वहां जा कर देखा कि साधुओं की दम्पति भगवा पहने विभूति रमाये धूनी के सामने बैठ कर खप्पर में दूध उबाल रहे हैं। दोनों ने गडरिये को अत्यन्त प्रेम से अपने पास बुलाया और दूध का कटोरा पीने को दिया। गडरिये ने दूध फैंक दिया क्योंकि उस खप्पर को देख कर उसे घृणा हो गई। उठते समय साधू ने अंगूठे से उस के माथे पर विभूति का तिलक लगाया। आगे जाकर जब दूसरे व्यक्ति ने उस के माथे पर अग्नि की ज्वाला जैसी

देखी तो विस्मित हो कर कारण पूछा। पहले व्यक्ति ने सारा वृत्तान्त सुना कर साधु की अत्यन्त निन्दा की और कहा कि उस ने न जाने मेरे माथे पर कौन सी भला लगा कर मुझे झूठा बना दिया। दूसरा व्यक्ति सारा रहस्य समझ गया। उसने विना कुछ सोचे ही उस का माथा चाट लिया और चाटने के साथ ही विद्युत् बन कर अन्तर्ध्यान हो गया। पहला व्यक्ति देखते ही रह गया परन्तु :—

'अब पछताय होत क्या जब चिडियां चुग गई खेत'।

दिव्य कपोतों पर एक दृष्टि :—

कश्मीर में एक प्रथा प्रचलित है कि यदि कोई यात्री अमरनाथ पहुँच कर भी गुफा में रहने वाले कपोत युगल का दर्शन न कर सके तो उस की यात्रा सफल नहीं रहती। कपोतयुगल का ही दर्शन साक्षात् भगवान आशुतोष शंकर महाराज का दर्शन माना जाता है। इस विश्वास को एक साथ ही अन्धविश्वास कह देना भी मूर्खता है क्योंकि प्रत्येक प्रथा किसी वास्तविक तथ्य पर अवश्य आधारित हुआ करती है अतः यहां पर इस विषय की विवेचना करना प्रसंग से बाहर न होगा।

माहात्म्य में कपोत युगल के विषय में जो कथा भैरव भैरवी सम्वाद में लिखी है उस का संक्षेप इस प्रकार है :—

"प्राचीन काल में भगवान शंकर ने कुमार जी के साथ क्रीडा निरत होने के कारण संध्याकाल को सूचित करने के लिए डामरक नाम वाले गण को रत्नशिखर पर स्थापित किया। यह गण प्रतिदिन सन्ध्या काल के समय डमरू बजा कर भगवान को सचेत कर देता था। कुछ समय के अनन्तर वह गण प्रमाद के कारण अपने कर्तव्य को भूल गया तथा भगवान का शाप पा कर शिला बन गया। इस के स्थान पर अन्य दो गण नियत हुए। यह दो गण भी अपने ही वाग्दोष से कबूतर बन गये परन्तु साथ ही वे भगवान के वरदान द्वारा अत्यन्त पवित्र आत्मा वाले बन गये। यही कारण है कि माहात्म्य में इन का दर्शन विशेष रूप से प्रशंसनीय माना गया है।"

जहां तक अन्य मतानुयायियों एवं उत्कृष्ट कोटि के विचारकों का सम्बन्ध है उन्होंने भी कपोत में किसी अवर्णनीय दिव्यता का अनुभव किया है।

काश्मीर में प्राचीन काल से कपोत के विषय में यह भी एक विचार चला आया है कि भगवान शंकर ने अपनी प्रियतमा पार्वती का पवित्र प्रेम प्राप्त करने के लिए कपोत का रूप धारण किया। इसी विचार को Mr. Maurice महोदय निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं :—

'Ninus[1] and Semiramis are Vishnu and Shiva, under the forms of doves and that Shiva assumed the form of a dove to regain the affections of Parbati, who had left him in a fit of jealousy".

मुसलमान दार्शनिकों के दृष्टिकोण में भी कपोतों का अत्यन्त महत्त्व है। इस विषय की पुष्टि में Vigne महोदय के शब्द पढिये :—

"The[2] dove has been called on by the Musalmans to dispense with the natural timidity in aid of their prophet, and to build its nest in the cave where Mohamat took refuge upon his flight from Macca".

आगे चल कर एक और स्थान पर इन्ही महोदयवर्यों ने कपोत को शान्ति का दूत बतलाया है। यह भी काश्मीर का ही दृष्टिकोण है :—

"The[3] dove has always been the emblem of

1. Ancient History of Hindustan by Mr. Maurice.
2. Travels in Kashmir by Vigne.
3. Travels in Kashmir by Vigne.

peace; the sublime and preternatural have always been concomitants of wilderness; solitude accompanied by any extraordinary degree of remoteness has often been a cause of sanctification, and the more wild and gloomy the locality; the bettei has it been thought qualified to become the peculiar residence of God".

इन इन विचारकों तथा उत्कृष्ट लेखकों के महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानों के फलस्वरूप हम इसी निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि अमरनाथ जैसे तीर्थ पर दिव्य कपोतयुगल के आवश्यक दर्शन में कोई अनिर्वचनीय रहस्य अवश्य भरा पड़ा है।

अमरेश्वर नाम की ऐतिहासिक प्राचीनता :—

आजकल यह स्थान अमरनाथ कहलाता है परन्तु प्राचीन इतिहास के अध्ययन से विदित होता है कि इस का वास्तविक नाम अमरेश्वर था। इसी नाम के उपलक्ष्य में काश्मीर के एक राजा ने अमरेश्वर नामक मन्दिर का भी निर्माण किया था जिस को आजकल 'डोंबुर हेर' कहते हैं। कश्मीर के महान एवं सर्वप्रथम ऐतिहासिक कल्हण ने भी अपनी राजतरङ्गिणी में इस का नाम अमरेश्वर ही लिखा है जब कि वह महाराजा नर के समय में शेषनाग द्वारा समस्त नगरी के जलाये जाने की घटना का वर्णन करता है। राजा नर काश्मीर के राजा विभीषण का पुत्र था। उस का मन शेषनाग की परमसुन्दरी पुत्री चन्द्रलेखा के रूप से विचलित हुआ। चन्द्रलेखा का विवाह विशाख नामक ब्राह्मण के साथ परिस्थितियों की विवशता से ही हुआ था। राजा ने चन्द्रलेखा का बलपूर्वक अपहरण करने के लिए सैनिकों को आदेश दिया। शेषनाग ने, जो कि उन दिनों नगर के ही एक उद्यान के सरोवर में रहता था, क्रोधी होकर नगर को भस्मसात् कर लिया और स्वयं नगरी को छोड़ कर दूरगिरि पर जा कर अपने निवास के लिए एक नया सरोवर बना लिया। इसी घटना का वर्णन कल्हण ने इस पद्य में किया है :—

"दुग्धा[1]ब्धिधवलं तेन सरो दूरगिरौ कृतं
अमरेश्वर यात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते ॥"

अस्तु हमें यहां पर इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं अपितु हम इस पद्य के तृतीय चरण को पढ़ कर इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि कल्हण के समय में भी इस तीर्थ का नाम अमरेश्वर ही था तथा उन दिनों भी लोग अमरेश्वर की यात्रा को जाते थे। आगे चल कर जोनराज की द्वितीय राजतरङ्गिणी में भी इसी बात की पुष्टि होती है। जोनराज ने काश्मीर के प्रसिद्ध राजा जैनुलाब्दीन 'बडशाह' के अमरनाथ जाने का वर्णन निम्नलिखित पद्यों में किया है :—

"कारु[2]ण्यात्कीर्तिलोभाच्च स्वयमेवाथ भूपतिः
वामपार्श्वे गिरौ वारि विस्रष्टुं चिरमभ्रमत् ।
दृष्ट्वा निःसलिलं शैलं लेदर्यानयनोत्सुकः
अश्रौषीच्छास्त्रवृद्धेभ्यस्तन्मूलममरेश्वरम् ।
निर्विघ्नं कार्यसिद्ध्यर्थं प्रसादयितुमीश्वरम्
आरुरोहामरेशाद्रिमभिमानमिवाथ सः" ।

अर्थात् जैनुलाब्दीन को वामपार्श्व में लेदर नदी से एक नहर[3] लानी थी तथा इस कार्य की सिद्धि के लिए उसे पहले अमरेश्वर जाना पड़ा। इस के पश्चात् जब मुगल सम्राट जलालुदीन अकबर मिर्ज़ा यूसुब खान तत्कालीन कश्मीर गवर्नर से कश्मीर के गुणों का वर्णन करने के लिए कहते हैं तो उत्तर में मिर्ज़ा यूसुबखान निम्नलिखित बात कहता है जिस का वर्णन श्री शुक अपनी चौथी राजतरङ्गिणी में यों करता है :—

'ततो[4] जलालदीनेन पृष्टो यूसुबखानकः ।
उवाचानन्तकाश्मीर गुणानानतमस्तकः ।

---

1. कल्हण रा. त. १–२६८ 2. रा. त. जोनराज १२३२–३४.
3. यह नहर आज कल भी 'शाह क्वल' के नाम से प्रसिद्ध है।
4. प्राज्यभट्ट रा. त. ८४१, ८४७-४६ ।

य[1]स्मिन्भगवती संध्या सन्ध्यानां त्रितये सदा
ददाति दर्शनं ग्रीष्मे सलिलागमनिर्गमैः।
यत्रामरेश्वरः साक्षाद्धिममूर्तिधरो विभुः
वर्धते शुक्लपक्षेऽसौ कृष्णपक्षे च हीयते।
भग[2]वान्स्वयमग्नि स यत्र जाज्वल्यते सदा
नेन्धनं विद्यते यस्य नाङ्गारो यस्य दृश्यते।

इन पद्यों से भी स्पष्ट होता है कि अकबर के जमाने तक भी इस तीर्थ का नाम अमरेश्वर ही था और उस के शुक्लपक्ष में बढ़ने तथा कृष्णपक्ष में घटने की बात भी प्रसिद्ध ही थी। हमारा विचार है कि केवल सौ डेढ सौ वर्ष पूर्व ही बाहर से आने वाले सन्यासियों ने इस तीर्थ को 'अमरनाथ' यह नाम दिया होगा क्योंकि जैसा उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि न कश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में और न माहात्म्य में ही 'अमरनाथ' इस नाम का कहीं विशेष उल्लेख आता है।

जहां तक राजतरङ्गिणी के गम्भीर अध्ययन का सम्बन्ध है, कल्हण से कुछ एक हजार या उस से भी अधिक वर्ष पूर्व अमरेश्वर की प्रसिद्धि कुछ कम हो गई थी। नीलमत पुराण में एक पद्य आता है। "अ[3]मरेशे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्" जिस से हम इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि बहुत प्राचीन समय में अमरेश एक प्रख्यात तीर्थ था परन्तु कुछ समय के अनन्तर शारदा, स्वयं, भेडगिरि इत्यादि तीर्थों ने इसका स्थान ले लिया था जैसा कि कल्हण राजतरङ्गिणी के अध्ययन से स्पष्ट भी होता है। अनन्तर सम्भव है कि दरद देशों में मुसलमान मत फैल जाने से कश्मीर की हिन्दू जनता उन प्रदेशों में विद्यमान शारदा इत्यादि तीर्थों पर जा न सकी, फलतः फिर अमरेश्वर की ही शरण में जाना पड़ा। यहां तक भी 'अमरेश्वर' इस नाम में कोई परिवर्तन नहीं आया था। परिवर्तन तो हमें तारीखि हसन में प्रथम बार दृष्टि गोचर होता है। तारीखि हसन नामक काश्मीर इतिहास का लेखक पीरजादा

---

1. इस तीर्थ का आधुनिक नाम 'त्रिसन्ध्या' है। लोग आजकल भी वहां जाते हैं। 2. इस तीर्थ का आधुनिक नाम 'स्वयं' है। 3. नीलमत पुराण।

हसन महाराजा रणवीरसिंह (1857–85) के समय में विद्यमान था अतः जैसा अभी ऊपर कहा गया है कि सौ डेढ सौ वर्ष पूर्व ही बाहिर से आने वाले सन्यासियों ने ही इस का 'अमरनाथ' यह नाम दिया होगा और पीरजादा हसन ने भी तत्कालीन प्रचलित नाम को ही अपने इतिहास में लिख दिया। अतः यह बात अवश्य विचार में रखनी होगी कि इस तीर्थ का 'अमरेश्वर' यह नाम ही प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध प्रतीत होता है।

माहात्म्य तथा कश्मीर की लोक कथा के आधार पर यात्रा का प्राचीन मार्ग :—

हमारे 'ङ' पुस्तक के प्रथपृष्ट पर अमरेश्वर यात्रा में आने वाले स्नान करने के स्थानों का क्रम से विस्तृत वर्णन दिया गया है उसी का कुछ रूपान्तर यहां पर लिखना उपयुक्त ही होगा :—

१.		अपने घर में प्रथम स्नान क्योंकि यात्रा को निकलते समय अपना घर ही प्रथम तीर्थ माना गया है।
२.	गणपतयार	यह स्थान अमीराकदल तथा हब्बाकदल के मध्य में वितस्ता नदी के तट पर स्थित है। यहां पर एक सुन्दर मन्दिर है। कहा जाता है कि एक समय में यह एक प्रसिद्ध बौद्ध विहार था।
३.	षोडश क्षेत्र	आधुनिक 'पुराहयार' यह स्थान भी श्रीनगर से दो ढाई मील के अन्तर पर वितस्ता नदी के तट पर स्थित है। यहां पर एक मन्दिर है।
४.	पद्मदृष्टि	माहात्म्य में इस का आधुनिक नाम 'पान्द्रेन्ठन' दिया गया है परन्तु राजतरंगिणी में 'पान्द्रेन्ठन' का नाम 'पुराणाधिष्ठान' लिखा है। यह स्थान श्रीनगर से ४ मील के फासले पर स्थित है। यहां पर एक प्राचीन शिला मन्दिर है।

५.	पद्मपुर	आधुनिक 'पाम्पोर' यह श्रीनगर से ८ मील की दूरी पर स्थित है।
६.	सिद्धक्षेत्र	आधुनिक 'स्यदयार', यह स्थान पाम्पोर के समीप ही है।
७.	मारेश	आधुनिक 'मारुस' यह स्थान पम्पोर से तीन चार मील के फासले पर पाम्पोर तथा ल्यतपोर के मध्य में स्थित है। यहां रुद्रगङ्गा का प्रसिद्ध तीर्थ है।
८.	यवती	आधुनिक 'ज्यवभ्रार', पं० संसार चन्द कौल ने अपने 'The Mysterious cave of Amarnath' नामक पुस्तक में इस स्थान को आधुनिक 'ज्यवन' जो कि श्रीनगर से छः मील के फासले पर स्थित है, के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है परन्तु उन की उस कल्पना का आधार हमें ज्ञात नहीं क्योंकि 'ज्यवन' का प्राचीन संस्कृत नाम 'जयवन' है 'यवती' नहीं। 'जयवन' का उल्लेख काश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने भी अपने 'विक्रमाङ्कदेव चरित्र' के १८वें सर्ग में किया है। इस के अतिरिक्त 'ज्यवभ्रार' एक पृथक् स्थान है और 'ज्यवन' पृथक्।
९.	मिष्ठोद	आधुनिक 'मिठवन' अर्थात् मीठे पानी का स्थान।
१०.	अवन्तिका-सिद्धक्षेत्र	आधुनिक 'वून्त्यपोर', यहां पर कश्मीर के प्रसिद्ध नरेश अवन्तीवर्मन् के बनाये हुये मन्दिरों के भग्नावशेष अभी भी विद्यमान हैं।

सिद्धक्षेत्र भी अवन्तीपुर के समीपवर्ती एक प्रदेश का नाम है। यहां पर सुरेश्वरी की स्थापना है। काश्मीर के प्रसिद्ध सुलतान जैनुलाब्दीन 'बडशाह' ने यहां सिद्ध[1]पुरी नगरी का निर्माण किया था।

---

1. जोनराज द्वितीय रा. त. श्लोक ११५७ Bombay Edition.

११. महानाग — आधुनिक 'मेहरनाग'। हमारी 'ग' पुस्तक में इस का नाम 'महावरेश्वर' लिखा है।

१२. बलिहार — आधुनिक 'बालियार'। हमारी 'ग' पुस्तक में इस स्थान का प्राचीन नाम 'लक्ष्मी-क्षेत्र' लिखा है परन्तु अन्य चार पुस्तकों में इस का उल्लेख नहीं है।

१३. हरिद्रा — आधुनिक 'हारी'। यह स्थान अवन्तीपुर से तीन चार मील के फासले पर स्थित है। यहां पर एक कुण्ड और मन्दिर है। यह गणेश जी का स्थान है।

१४. ज्येष्ठाषाढा — हमारी 'ख' पुस्तक के आधार पर आधुनिक 'संगम' जहां पर वितस्ता नदी तथा विषव (विशोका) नदी का पानी मिलता है तथा 'ङ' पुस्तक के आधार पर आधुनिक 'गीरू' के समीप कोई स्थान।

१५. वागाश्रम — आधुनिक 'वाग होम'। यहां की प्रचलित लोक कथा के आधार पर यह स्थान प्रसिद्ध आयुर्वेद के ज्ञाता वाग्भट्ट की जन्मभूमि है। यहां के तीर्थ का नाम हस्तिकर्ण है।

१६. चक्रेश — आधुनिक 'चक्धर'। यह स्थान विजयेश्वर (बिज-बिहारा) के समीप ही है इस स्थान का राजतरङ्गिणी में अनेक बार उल्लेख आता है। यह प्राचीनतम स्थान है।

१७. देवकतीर्थ — आधुनिक 'दिवकीकार'।

१८. हरिश्चन्द्र — चन्दनयार।

१९. स्थूलवाट — 'थज्य् वोर' यहां पर शंकर की जटाओं से गङ्गा का प्रादुर्भाव हुआ है।

२०. सूर्य गुह्यवाट — आधुनिक 'सिरि ग्वफवोर'।

२१. लम्बोदरी — आधुनिक 'लेदर' नदी जो शेष नाग से निकलती है।

२२. सूर्याश्रम — आधुनिक 'सिर होम'।

२३. सखरस — आधुनिक सखरस। यह गणेश जी का स्थान है।

२४.	बद्धोरस	आधुनिक 'भदुर'।
२५.	हयशीर्षाश्रम	आधुनिक 'कमलनाग'।
२६.	उत्तरनाग	आधुनिक 'वोत्तरनाग'
२७.	सरलक	आधुनिक 'सलर'।
२८.	खिल्यायन	आधुनिक 'बाल ख्यलन'।
२९.	महाक्षेत्र	ख्लर्।
३०.	मामलक	आधुनिक 'मामलेश्वर'। यह स्थान पहलगाम के समीप ही लेदर नदी के दक्षिण तीर पर स्थित है। इस स्थान का वर्णन आगे माहात्म्य में भी आयेगा।
३१.	भृगुक्षेत्र	आधुनिक 'पहलगाम'।
३२.	नीलगंगा	आधुनिक 'नीलगंगा'।
३३.	स्थाएवाश्रम	'चन्दनवाडी'।
३४.	पेषगिरि	'पिसू पर्वत'।
३५.	सुश्रुमनाग	'शेषनाग'।
३६.	वायुवर्जन	'वावजन'।
३७.	पंचतरङ्गिणी	पंचतरणी।
३८.	अमरेश्वर	रत्नगिरि, कश्मीरी 'भैरव बाल' पर स्थित एक शिव गण का स्थान।
३९.	गर्भागार	आधुनिक 'गर्भजून' अथवा 'गर्भयात्रा'।
४०.	अमरावती	आधुनिक 'ओम्बरावती'।
४१.	अमरेश्वर	'अमरनाथ'।
४२.	संगम	जहां पर अमरावती तथा पंचतरणी का जल मिलता है। पंचतरणी से लोग फिर वापिस आते समय केलनार तथा हत्यारा तालाब से होते हुए सासकुटी के मार्ग से चन्दनवाडी पहुँच जाते थे परन्तु यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम होने के कारण अब काश्मीर राज्य द्वारा बन्द कर दिया गया है।
४३.	नवदल	यह स्थान आधुनिक 'त्राल' ग्राम से ३ मील के फासले पर स्थित है। प्राचीन यात्री मामलेश्वर

के कुछ ही दूर 'बुघमोर' नामक पहाड़ी को पार करके इस स्थान पर पहुँच जाते थे। यहां जा कर श्राद्धादि अवश्य करना होता था क्योंकि उस के बिना यात्रा अधूरी समझी जाती थी।

इन सब स्थानों का वर्णन आगे माहात्म्य में आयेगा अतः यहां पर हम ने संक्षेप में केवल इन का परिचय देने का ही प्रयत्न किया है।

आधुनिक यात्रा क्रम का संक्षिप्त वर्णन :—

यद्यपि माहात्म्य में श्रावणी पूर्णिमा के दिन ही श्री अमरनाथ जी के रस लिङ्ग का दर्शन करना पुण्यदायक कहा गया है क्योंकि इसी दिन इस का आविर्भाव हुआ था परन्तु तथापि आजकल ज्येष्ठ मास से लेकर श्रावण के अन्त तक यात्रियों का तांता बंधा लगा रहता है और गर्मियों के महीनों में यहां एक अनुपम चहल पहल रहती है। श्रावण के महीने में तो अमरनाथ जी की यात्रा बड़ी धूम धाम से छड़ी साहेब की अध्यक्षता में होती है। भारत के कोने कोने से लोग इस दिन अमरनाथ जी के दर्शन के लिए आते हैं और यात्रा हज़ारों की संख्या में होते हैं। साधु सन्यासी भी बहुत होते हैं। इस दिन कश्मीर राज्य द्वारा तथा धर्मार्थ कार्यालय द्वारा यात्रियों के सुभीते के लिए एक विशेष प्रबन्ध होता है ताकि किसी भी अपरिचित यात्री को किसी प्रकार के कष्ट का भाजन न बनना पड़े।

श्री छड़ी जी का प्रस्थान श्रावण शुक्ल चतुर्थी के दिन दशनामी अखाड़े से होता है। इस दिन यहां पर बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। श्री युवराज कर्णसिंह जी (सदरे रियासत) श्री युवरानी यशोराज्यलक्ष्मी के समेत छड़ी जी की पूजा करने के लिए यहां पधारते हैं। साधु सन्यासियों का तो यह अत्यन्त सुखदायक पर्व ही होता है। अन्त में लोग ज़ोर ज़ोर से जय जय कार मनाते हुए श्री छड़ी जी को बिदाई देते हैं। प्राचीन काल में यात्रियों का प्रस्थान भी इसी दिन हुआ करता था क्योंकि उन दिनों श्रीनगर से ही पैदल यात्रा हुआ करती थी। आज

कल तो यात्री अपनी इच्छा से यात्रा के लिए निकलते हैं क्योंकि लारियों तथा मोटरों द्वारा ३-४ घंटों में ही पहलगाम पहुँचा जा सकता है। श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन प्रत्येक यात्री टट्टुओं या कुलियों की सहायता से यात्रा के पहले पडाव चन्दनवाडी के प्रति प्रस्थित होता है। पहलगाम से चन्दनवाडी का रास्ता पहाडी ढलवान के साथ साथ लिदर नदी के दाहिने किनारे चला जाता है। रास्ते में कोई विशेष चढाई नहीं आती है। पहाडों की ढलवानें देवदारु वृक्षों से आच्छादित हैं। एक बहुत बडा भव्य दृश्य दिखाई देता है यात्री लोग गाते बजाते कीर्तन करते घने जंगलों, टीले टीकरों पर से चलते हुए 'चन्दनवाडी' पहुँच जाते हैं। चन्दनवाडी एक खुला दूब से भरा मैदान होने के कारण एक अच्छा खासा कैम्पिंग ग्राऊंड है। इस मैदान में बहुत से तम्बू ताने जाते हैं। सन्यासी लोग धूनियां जलाते हैं। रात भर एक नगर जैसा प्रतीत होता है। दूसरे दिन प्रातः काल इसी रीति से यात्रियों का दल 'वावजन' के पडाव के लिए निकल जाता है। चन्दनवाडी से कुछ दूर एक हिमानी को पार कर के धीमी धीमी चढाई वाली 'पिसू' घाटी आती है। इस के पश्चात पिसू की कठिन चढाई का सामना होता है। मार्ग अत्यन्त उत्कट, विषम तथा फिसलन वाला है। आगे जोजपल के मनहर दृश्य को देखते हुए तथा वहां के मधुर एवं सुगन्धित जल का आस्वाद करते हुए यात्री लोग शेषनाग पहुँच जाते हैं। शेषनाग भी इस दिन अनुपम आभा में झूमता झामता जैसा दिखाई देता है। यात्री इस में स्नान करके वावजन पहुंच जाते हैं। यहां सर्द वायु के झोंके यात्रियों की देह को चूर २ कर लेते हैं। तीसरे दिन अर्थात् श्रावण शुक्ला चतुर्दशी के दिन पंचतरणी के पडाव की ओर यात्री वृन्द प्रस्थान करता है। वावजन से कुछ दूर चल कर महागुनस चढ़ाई आरम्भ होती है। यों तो वर्षा के अभाव में यह मार्ग अत्यन्त कठिन नहीं होता है परन्तु किसी वर्ष अभाग्यवश वर्षा होने पर यह दलदल जैसा बन जाता है और यात्रियों को चलने में बहुत असुविधा आती है। महागुनस की अधित्यका चारों ओर से हिमवेष्ठित स्थान होने के कारण अत्यन्त भयावह तथा कभी कभी प्राणों को भी संशय में डालने वाला स्थान है। इस स्थान पर

शीत की अधिकता से भी कुछ यात्री मृत्यु का शिकार हो जाते हैं कारण यह कि भारत के सुदूरवर्ती गर्म प्रदेशों से आये हुए यात्री हिमालय की बर्फीली चोटियों से अपरिचित होने के हेतु साधारण सर्द कपड़ों में ही यात्रा करते हैं जिस से महागुनस पर चढने के अनन्तर ही अधित्यका पर थोड़ा सा विश्राम लेने से वहां की हिममय सर्द हवा उन यात्रियों पर विशेषतः आक्रमण करके उन के अत्युष्ण रक्त को जमा कर उन्हें मृत्यु का ग्रास बनाती है। अतः प्रत्येक यात्री विशेष कर भारत से आने वाले यात्रियों के लिए परमावश्यक है कि वे ऐसे स्थानों पर चलते समय शरीर को गर्म कपड़ों से ढक लें चाहे धूप ही क्यों न हो ताकि गर्म कपड़ों से शरीर का रक्तप्रवाह जमने न पावे। अस्तु, महागुनस की दूसरी ओर केलनार की उतराई समाप्त करके यात्री पंचतरणी की विस्तृत घाटी में पहुँच जाते हैं। यहां पर भी एक बड़े बाजार की जैसी चहल पहल होती है। हजारों तम्बू ताने जाते हैं जिस से पर्वत के इस एकान्त छोर में किसी छिपी हुई इन्द्रपुरी का भ्रम हो जाता है। रातभर यहां गायन भजन इत्यादि में निरत हो कर प्रातःकाल पूर्णिमा के दिन पौ फटने के पूर्व ही समस्त यात्रीगण अपना सारा सामान वहीं छोड कर केवल पूजा की सामग्री साथ लिए संतसिंह के मार्ग से अमरनाथ जी के दर्शन के लिए जाते हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व यात्री लोग रत्नगिरि (कश्मीरी भैरवबाल) पर चढ कर अमरेश्वर की प्रदक्षिणा कर के, गर्भागार में से होते हुए अमरनाथ जी की गुफा पर पहुंच जाते थे। इसी रत्नगिरि के शिखर से अपने आप को गिरा कर कई साधू लोग शिव के चरणों में आत्मसमर्पण करते थे जिस को कश्मीरी में (भैरव करुन) कहते थे। परन्तु यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम होने के कारण काश्मीर राज्य ने बन्द कर दिया है अतः सन्तसिंह वाले मार्ग से ही आजकल आना जाना होता है। ४ मील का मार्ग समाप्त करने के अनन्तर यात्रीदल उस पवित्र स्थान पर पहुंच जाता है जिस की एक ओर से बहने वाली अमरावती तथा दूसरी ओर से बहने वाली अमर गंगा (गुफा की भीतर वाली अमृत धारा) आकर संगम बना देती हैं। इन्हीं दो गङ्गाओं के मध्य में श्री अमरनाथ जी की गुफा का अद्भुत एवं रहस्यमय दृश्य देखने

में आता है। चारों ओर से बर्फ के अथवा विभूति के बड़े विचित्र पहाड इस स्थान की शोभा पर चार चान्द लगा देते हैं जिन के देखने मात्र से सन्तप्त हृदय को आत्यन्तिक शान्ति मिलती है और कश्मीर के वास्तविक रूप में भूस्वर्ग होने का परिचय मिल जाता है। यात्री लोग अमरावती में स्नान करके शरीर पर विभूति मल कर दिगम्बर रूप में गुफा में प्रविष्ट होते हैं और रसलिङ्ग का दर्शन करते हैं। उस समय प्रत्येक व्यक्ति अपूर्व तथा दिव्य आनन्द में विभोर हो कर अपना सर्वस्व भी खो कर पूजा में निरत हो जाता है। उसे उस समय ऐसा लगता है कि मानो उसने जीवन की लम्बी यात्रा समाप्त करके अपना सर्वस्व प्राप्त किया है और वह ससीम से असीम बन गया है। कुछ समय तक गुफा में पूजा इत्यादि समाप्त करने के अनन्तर यात्री फिर भी पंचतरणी पर लौट आते हैं और रातभर वहां विश्राम करने के अनन्तर दूसरे दिन शेषनाग के ही रास्ते से वापिस लौटते हैं। प्राचीन समय में हत्यारा तालाब और सासकुटी के मार्ग से वापिस आना होता था परन्तु जैसा कि पहले भी कहा गया है कि वह मार्ग अत्यन्त दुर्गम था अतः कश्मीर राज्य ने पिछले कई वर्षों से उस पर रोक थाम लगाई है। इस प्रकार यह परम पवित्र यात्रा समाप्त होती है।

श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने भी एक बार इस यात्रा का वर्णन अधोलिखित शब्दों में किया है :—

The procession of several thousands of Pilgrims in the far away cave of Amarnath rested in a glacial gorge of the western Himalayas, through some of the most charming scenery in the world is fascinating in the Extreme. It strikes one with wonderment to observe the quiet and orderly way in which a canvas town springs up in some valley with incredible rapidity at each halting place with its Bazars and broad streets running the middle and vanishing as quickly at the break of dawn, when the whole army of gay pilgrims are on their march once more for the day. Then again the glow of the countless cooking fires, the ashes covered sadhus under the canopy of their

large gern (orange) umbrellas pitched in the ground, sitting and discussing on meditating before their Dhunis (fires). The sanyasis of all orders in their various garbs, the men and women with children from all parts of the country in their characteristic costumes and their devout faces, the larches shining at night-fall, the blowing of conch shells and horns the singing of hymns and prayers in chorus all these and many other romantic sights and Experiences of a pilgrimage, which can be met nowhere outside India, are the most impressive and convey to some extent an idea of the overmastering passion of the race for the religion of psychological aspect and significance of such pilgrimage done on foot for days and days. Much could be written but suffice it to say that it is one of those ancient institutions which have above all kept the fire of sprituality burning in the hearts of the people. One sees here the very sonl of the Hindu nation laid bare in all its innate beauty and sweetness of faith and devotion.

माहात्म्यों का महत्त्व :—

किसी भी देश की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के ऐतिहासिक संकेत उस देश की लोककथाओं एवं प्राचीन फुटकल लेखों में अन्तर्निहित होते हैं। श्री भृङ्गेश जैसे उच्चकोटि के लेखक ने हमारे कश्मीर देश के प्रसिद्ध तीर्थों के माहात्म्य लिख कर हमारे देश की प्राचीन ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दिशा में चार चान्द लगा दिये हैं। यह ठीक है कि इन माहात्म्यों में वर्णित घटनायें आधुनिक मस्तिष्क का पथ्य नहीं बन सकती हैं परन्तु इतने से ही माहात्म्यों के महत्त्व में कोई हानि नहीं आसकती है। काश्मीर की प्राचीन भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दशा का अध्ययन करने वाले व्यक्तियों को इन माहात्म्यों से कितना कुछ प्राप्त हुआ है, पाठकों को इस तथ्य का परिचय डा० स्टैन महोदय का राजतरंगिणी अनुवाद अथवा Ancient geography of Kashmir इत्यादि पुस्तक पढने से ही मिल सकेगा तथा साथ ही उन्हें यह भी

समझ में आयेगा कि इन माहात्म्यों का Topographical मूल्य कितना है और देश के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थियों को खोलने में यह कितनी कुछ क्षमता रखते हैं। हमने रिसर्च कार्यालय के अध्यक्षों को भी इस बात से परिचित किया जिस के फल स्वरूप उक्त कार्यालय अधिक से अधिक माहात्म्यों के संकलन के प्रयत्न में लग रहा है। हम काश्मीर निवासी जनता से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह ऐसी अमूल्य निधियों को कीडों मकोडों का आहार तथा गर्म मसाले की पुडियां न बना कर रिसर्च कार्यालय को अर्पण करने की कृपा करें ताकि कार्यालय कश्मीर के ऐतिहासिक रहस्यों को व्यक्त करने में अधिक सफल हो सके।

प्रस्तुत माहात्म्य का आधार :—

प्रस्तुत अमरेश्वर माहात्म्य का आधार श्री भृङ्गेश ऋषि की भृङ्गेश संहिता है। भृङ्गेश ऋषि काश्मीर देश के एक महान ऐतिहासिक एवं भूगोलविद् महापुरुष गुज़रे हैं, जिन के कालनिर्णय के विषय में निश्चितरूप से कुछ कहा नहीं जाता है। कई लेखकों का विचार है कि ये कश्यप ऋषि के अनन्तर उत्पन्न हुए हैं क्योंकि इस सम्बन्ध में भृङ्गेश संहिता में एक मनोरंजक कथा मिलती है :—

"जब कश्यप ऋषि ने इस भूभाग को जल से निकाल कर निवास के योग्य स्थल बनाया तो इसे नागराज (तक्षक अथवा नील) के अधिकार में छोड स्वयं अन्तर्ध्यान हुए। कुछ समय के उपरान्त श्री भृङ्गेश जी हिमालय की चोटियों पर घूमते २ इधर आ निकले तथा यहां के मनोहर तीर्थों से प्रभावित हो कर उन्होंने अन्य लोगों को भी उन के रहस्यों से परिचित कराना आरम्भ किया" इत्यादि।

वास्तव में कश्मीर के तीर्थों का भौगोलिक परिचय देने वाले यही एक सर्वप्रथम सिद्धहस्त लेखक हैं। इस सम्बन्ध में इन के द्वारा लिखित माहात्म्यों के संग्रह को भृङ्गेशसंहिता कहते हैं। यह ग्रन्थ इस समय अविकल रूप में प्राप्य नहीं है परन्तु कश्मीरी पंडित घरानों में कुछ फुट कल माहात्म्य अब भी पाये जाते हैं। स्वर्गीय श्री महाराजा रणवीर सिंह

जी ने अपने अथक प्रयत्नों से भृङ्गेश संहिता के कई अंश एकत्रित किये हैं जिन में अमरनाथ माहात्म्य भी है। यह एक हस्तलिखित प्रति है तथा इस का विवरण डा० स्टैन महोदय के 'Catalogue of Sanskrit Mss, Shree Ragunath temple Library Jammu में दिया गया है अतः प्रस्तुत माहात्म्य इसी भृङ्गेश संहिता पर आधारित है जैसा कि माहात्म्य के प्रथम परिच्छेद की अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट होता है।

प्रस्तुत माहात्म्य का विषय :—

समग्र माहात्म्य भैरव तथा भैरवी के प्रश्नोत्तर रूप में वर्णित है। भारत में किसी भी ऐतिहासिक विषय को प्रश्नोत्तर रूप में वर्णित करने की प्रथा प्राचीन काल से चलती आई है। हमारे पुराण इत्यादि भी श्रोता ऋषिगण और श्रावक सूत शौनक आदि पात्रों के प्रश्नोत्तर में लिखे गये हैं। कश्मीर देश पर प्राचीन काल से तान्त्रिक प्रभाव होने के कारण यहां के तान्त्रिक ग्रन्थ अथवा माहात्म्यादि भी भैरव तथा भैरवी के संवादरूप में लिखे गये हैं। प्रस्तुत माहात्म्य में भैरव, भैरवी के मन में विद्यमान शंकाओं के समाधान के लिये, प्रथम परिच्छेद में समग्र यात्रा में आने वाले स्थानों का केवल नाम निर्देश कर के, अन्य परिच्छेदों में उन स्थानों से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं एवं वहां पर पूजा स्नान इत्यादि से जन्य माहात्म्य का सविस्तर वर्णन करते हैं। स्थानीय परिचय पौराणिक रंग में रंगा हुआ है तथा कहीं कहीं पर उस में अतिशयोक्ति भी आगई है। अर्थवाद की इतनी भरमार है कि मनुष्य पढते पढते बहुत बार ऊब भी जाता है परन्तु ऐसा होने पर भी अमरनाथ यात्रा में आने वाले तत्कालीन स्थानों का जो भौगोलिक परिचय हमें प्राप्त होता है वह बडा सराहनीय है।

प्रस्तुत श्रम का प्रथम अंकुर :—

आज से लगभग दो वर्ष पहले जब कि हम रिसर्च कार्यालय में एक साथ काम कर रहे थे, एक दिन अकस्मात् अमरनाथ के विषय

में चर्चा छिड जाने पर हमारे मन में विचार आया कि क्या आज तक किसी ने ऐसे प्रसिद्ध तीर्थ के माहात्म्य पर लेखनी उठाई है या नहीं। कार्यालयीय वातावरण ही ऐसा होने से हमारे मन में ऐसा विचार आना स्वभाविक ही था। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि कुछ वर्ष पूर्व जम्मूनिवासी श्री देवराज शास्त्री ने अमरनाथ माहात्म्य का मूलपाठ प्रकाशित किया था। तुरन्त हमने उक्त महोदय के नाम पत्रव्यवहार किया परन्तु कोई संतोषजनक उत्तर न मिला। इस के अनन्तर हमारे पास एक और सूचना आई कि श्री दुर्गानाग मन्दिर के महन्त श्री महाराजकृष्ण के पास उसी पुस्तक की एक जीर्ण शीर्ण प्रति अभी तक विद्यमान है। इस को भी देखने की लालसा से हमने इधर उधर दौड-धूप की परन्तु निराशा की धुंधली रेखा ही सामने नज़र आई। अतः उस पुस्तक के विषय में हम यह नही कह सकते हैं कि वह कहां तक सफल प्रयत्न था। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये यह साधारण सा विचार हमारे हृदय की तीव्र वेदना का रूप धारण करता गया। वास्तव में तो अमरनाथ मांहात्म्य को सम्पादित करने में हमें कोई अडचन नहीं थी परन्तु प्रश्न यह था कि मूलपुस्तक कहां से मिले। प्रश्न था भी बडा जटिल क्योंकि कश्मीर में बहुत से पण्डित घरानों में अभी भी पुस्तकों के भण्डार पडे हैं जिन में अमरनाथ माहात्म्य जैसी पुस्तकों का कोई मूल्य नहीं है परन्तु न जाने उन पुस्तकों के अधिष्ठाताओं तथा स्वामियों के मस्तिष्क में वही पुराने दकयानूसी विचार अभी तक क्यों भरे पड़े हैं जिन से वे उन अमूल्य निधियों को कीडों तथा चूहों का उपहार बना कर जनसाधारण का उपकार करने में हिचकिचाते हैं। हमारे रिसर्च कार्यालय में उन्हीं दिनों कार्यालय द्वारा खरीदी हुई एक पुस्तक विद्यमान थी। यद्यपि उस पुस्तक का संरक्षण हमारे हाथों में ही सौंपा गया था तथापि उस पर काम कर कार्यालय को वंचित करने का किञ्चिन्मात्र भी विचार हमारे मन में जन्म न पा सका। अतः ऐसी परिस्थितियों के होने पर भी हमारे श्रम में शिथिलता न आ सकी और हमारे निरन्तर अन्वेषण के फलस्वरूप कुछ समय के पश्चात हमारे हाथ एक मूलपुस्तक आई जो कि पीछे हमारी निजी सम्पत्ति ही बन

कर रही। ठीक है सर्वशक्तिमान परमात्मा भी कभी किसी के सत्य संकल्प को पूरा करने में पूर्ण सहयोग दे कर मानव के उत्साह को बढाते हैं। यही पुस्तक हमारे प्रस्तुत श्रम का प्रथम अंकुर बना।

हमने कार्य आरम्भ किया परन्तु केवल एक मूलपुस्तक पर कोई कृति सम्पादित करनी सिद्धहस्त सम्पादकों की शक्ति से भी बाहिर है क्योंकि सम्पादक को किन कठिनाइयों और उलटफेरों के भंवर में गुजरना पडता है वह वही जानता है। 'सम्पादन करना' यह शब्द तो जितना कहने में सरल है उस से लाख गुणा कार्यरूप में लाने के लिए कठिन है क्योंकि एक सम्पादक को ठीक वही जौहरी बनना पडता है जो कभी कभी अपने जीवन को भी संशय में डाल कर जवाहिर को खंडित अथवा कीटानुविद्ध होने से बचा लेता है। अस्तु, हमारा प्रयत्न निरन्तर चलता रहा और अन्त में हमारे इस कार्य में पूर्वोक्त महानुभावों ने हमारी सहायता की। जहां तक हो सका हमने पांच हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर मूलपाठ को व्याकरण छन्द, पूर्वापर सम्बन्ध अथवा अन्य कई दृष्टिकोणों से शुद्ध करने का प्रयत्न किया है परन्तु तो भी कई स्थानों पर ऐसे दोष रह ही गये हैं क्योंकि समग्र पुस्तकों में एक ही पाठ होने के कारण हम उस में कोई भी परिवर्तन न ला सके। इस के अतिरिक्त हमें किसी भी पुस्तक में अविकलता तथा वर्ण्य विषयों का स्पष्ट रूप में पूर्वापर सम्बन्धित होना दृष्टिगोचर नहीं हुआ, अतः ऐसे स्थानों पर पद्यों का स्थान इधर उधर बदला कर वर्ण्य विषयों को धाराप्रवाही बनाने का प्रयत्न किया है तथा टिप्पणी में उन उन पुस्तकों के नाम निर्देश के साथ ही उन उन स्थलों को भी निर्दिष्ट किया है। संक्षेप में यों कहा जाता है कि मूलपाठ को हृदयङ्गम बनाने में हम ने अपनी ओर से कोई कसर उठा न रखी परन्तु तथापि हमारा यह प्राथमिक प्रयास होने के कारण इस में त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक ही है। हमें आशा है कि विद्वज्जन हमारी उन त्रुटियों की ओर दृष्टि न डाल हमें सत्परामर्शों से समय समय पर सूचित करते रहेंगे। यदि हमारे इस प्रयास से पाठक कुछ मात्रा तक सन्तुष्ट होंगे तो आगे के संस्करणों में हम इसे और भी स्पष्ट तथा हृदयङ्गम बनाने का प्रयत्न करेंगे।

माहात्म्य का हिन्दी अनुवाद :—

यद्यपि मूलपाठ को हिन्दी में अनूदित करने से पुस्तक के गौरव होने का भय था तथापि यह पुस्तक अधिकतर असंस्कृतज्ञ व्यक्तियों की वस्तु होने से यह ग्रन्थगौरव हमें सहन करना ही पडा। हमारा विचार है कि पाठकवर्ग हमारे इस श्रम को सच्चे हृदय से सराहेंगे। हिन्दी अनुवाद करते समय जिस बात का विशेष ध्यान रखा गया है वह यह है कि पाठकों को मूलकथा समझने में किसी भी प्रकार की कठिनता न आ जाये। इस के अतिरिक्त यद्यपि अनुवाद का पद्यशः होना ही वास्तविक रूप में अनुवाद कहा जाता है परन्तु इस में हमें एक अडचन मालूम हुई कि मूलपाठ में कभी कभी एक भाव एक पद्य में समाप्त न हो कर दूसरे पद्य के प्रथम चरण में समाप्त होता है। ऐसी परिस्थिति में साधारण पाठकों को कथा समझने में अत्यन्त कठिनाई आती। अतः हम ने पद्यशः अनुवाद करने की प्रथा का विवश हो कर उल्लङ्घन कर के भावशः अनुवाद करने का प्रयत्न किया है साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा है कि अनुवाद करते समय मूलपाठ में वर्तमान कोई बात रह न जाये। संक्षेप में यों कहा जाता है कि हिन्दी अनुवाद साधारण पढे लिखे व्यक्तियों की सुविधा के लिए किया गया है विद्वज्जनों को प्रायः किसी पुस्तक का अनुवाद पढने की अपेक्षा मूलपाठ का अध्ययन करना ही अधिक रुचिकर होता है।

हमारे हार्दिक धन्यवाद :—

भूमिका का उपसंहार करने से पूर्व हम उन महानुभावों एवं सहानुभूतिशील विद्वज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमें प्रस्तुत कार्य में सच्चे हृदय से सहायता की है। सर्वप्रथम हम पंडित शम्भुनाथ कल्ला, पुरुषयार हब्बाकदल निवासी के ऋणी हैं जिन्होंने हमें सर्वप्रथम मूलपुस्तक देकर हमारी निराशा को आशा में परिवर्तित किया। हम अकिञ्चनों के पास हार्दिक धन्यवाद के अतिरिक्त और है ही क्या जो हम उन्हें अर्पण करें। रैणाबारी निबासी पंडित त्रिलोकी नाथ जी भट्ट शास्त्री,

भटयार निवासी श्री महादेव जी रीवू और सःथू निवासी ज्यौ० काशीनाथ जी हुण्डू जिन महानुभावों का उल्लेख हम ने ऊपर किया है, के भी हम चिर ऋणी हैं जिन्होंने हमें अन्य मूलपुस्तक देकर हमारे काम में हाथ बटाया है अतः यह महानुभाव भी हमारे धन्यवादों के अधिकारी हैं। रिसर्च तथा पब्लिकेशन डिपार्टमैंट के अध्यक्ष श्रीयुत ठाकुर गोवर्धनसिंह जी एम. ए. महोदय के तो हम विशेषरूप से अभारी हैं जिन की अध्यक्षता में रह कर हमें इस कृति के सम्पादन करने में विशेष साहायता प्राप्त हुई है। साथ ही हमारी यह भी शुभकामना है कि उक्त कार्यालय की दिन दूनी रात चौगुणी वृद्धि हो ताकि हम जैसे व्यक्तियों का यह आश्रयभूत नीड प्रतिसमय प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को दीपशिखा बन कर रहे। हम उक्त कार्यालयीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष (लाइब्रेरियन) पंडित राम जी दर, मित्र महोदय मुहम्मद अमीन इब्नि महजूर तथा मुहम्मद अमीन रफीकी साहिब को भी क्रमशः पुस्तकालय से पुस्तकें देने तथा कहीं कहीं सत्परामर्श देने के लिए मुक्त कण्ठ से धन्यवाद देते हैं। हम फाइन आर्ट प्रेस के प्रबन्धक श्री निरञ्जन नाथ जी महोदय के भी कृतज्ञ हैं जिन्होंने मुद्रणविषयक सत्परामर्शों से और प्रेस में अन्य कार्यातिभार होते हुए भी इस पुस्तक को मुद्रित करने से हमारा ही नहीं प्रत्युत समग्र श्रद्धालु जनता का उपकार किया है।

अन्त में हम समग्र विद्वज्जनों से धन्यवाद देते हुए सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे इस प्राथमिक प्रयास में केवल दोषों की ओर ही न देख कर प्रति समय अपने अमूल्य सत्परामर्शों द्वारा हमारे उत्साह को बढावा देते हुए हमें कृतार्थ करें।

श्रीनगर–कश्मीर

तिथि—२६ जनवरी, १९५७

"सम्पादक"



Srinagar to Amar Nath ji cave via Pahalgam

Name of each place of importance	Distance in miles between places	Total No of miles from Srinagar	Remarks
Srinagar	0	0	
Sonawar	$2\frac{1}{4}$	$2\frac{1}{4}$	Bazar
Sonawar camping ground	$\frac{1}{4}$	$2\frac{1}{2}$	Do
Batawara	$\frac{1}{2}$	3	Octroi post
Pandrnthan	$\frac{3}{4}$	$3\frac{3}{4}$	An ancient temple
Athawajan	$1\frac{1}{4}$	5	Stone quarry
Pantchuk	$\frac{1}{2}$	$5\frac{1}{2}$	Do
Sempora	1	$6\frac{1}{2}$	Do
Pampore	$1\frac{5}{8}$	$8\frac{1}{8}$	Town P. O.
Kadalbal	$\frac{3}{4}$	$8\frac{7}{8}$	
Galandar	$2\frac{1}{8}$	11	
Litapora	$2\frac{1}{2}$	$13\frac{1}{2}$	Village
Barsu	$1\frac{1}{2}$	15	
Jambrai	2	17	Village, an ancient temple.
Awantipora	$1\frac{1}{2}$	$18\frac{1}{2}$	P. O Police station
Chorsu	$2\frac{1}{4}$	$20\frac{3}{4}$	Village
Kaicchajkote	2	$22\frac{3}{4}$	Do
Sether	1	$23\frac{3}{4}$	
Halmulla Marhama	$\frac{3}{4}$	$24\frac{1}{2}$	Village
Sangam	$\frac{1}{2}$	25	
Bij Bihara	$3\frac{1}{2}$	$28\frac{1}{2}$	Town
Khanabal	$3\frac{1}{2}$	32	
Anantnag	2	34	Town P. O T. O. Dispensary
Sernal	1	35	
Pihru	1	36	
Paibug	1	37	

Bawan	1½	38½	Martand canal T. O. Bazar Famous Hindu Shrine.
Bumzu	1½	40	Ancient temple in cave
Hatamara	¾	40¾	Village
Seer kaniligund	1½	42¼	Do
Akar	1½	43¾	Do
Seligam	1¼	45	Do
Badigam	¾	45¾	Do
Jammu	1¼	47	Do
Ladru	¾	47¾	Do
Aish Mukam	½	48¼	Mohamadan shrine
Ganeshpora	1½	49¾	Canal
Do Village	1	50¾	Head works of Martand canal
Cchatarasu	2	52¾	
Bat kote	1	53¾	
Langanbal	1¾	55½	
Saihal	2	57½	
Ganeshbal	¾	58¼	
Pahalgam camping Ground	1½	59¾	
Pahalgam	1	60¾	
Do Pilgrim shed	1	61¾	
Freslin	3	64¾	
Chandanwari	4	68¾	Forest Rest House Pilgrim shed Ht. 9300 Ft.
Pissu ghati	1½	70¼	
Zojipal	2½	72¾	
Kuttar	¾	73½	
Shishram Nag	1	74½	Lake, Fresh water Ht. 11730 Ft.
Wavajan	1	75½	Camping ground Ht. 12230
Arhad Pathr	1½	77	
Mahagunas	½	77½	
Huksar	1	78½	

Kel Nar	1¼	79¾	Junction of Astan Marg
Nagarpal	1¾	81½	
Panchatarni	1	82½	Camping ground Ht. 12015 Ft.
Amar Nath ji Cave	4¼	86¾	

Srinagar to Amar Nath ji Cave via Sindh Valley

Name of each place of importance	Distance in miles between places	Total No of miles from Srinagar	Remarks
Srinagar	0		P. O. Bazar
Khanyar	3	3	
Jama Masjid	1	4	A ground, Mohamadan Mosque
Now shehra	2	6	P. O. Bazar
Vichar Nag	½	6½	Spring
Bia Hama	5½	12	Spring, road goes to Khirabhavani
Gandarbal	1	13	T. O. P. O. police station power house, dispensary.
Nunar	3	16	Village
Vailu	2	18	Suspensing bridge over sindh river
Prang	4	22	Village
Kangan	2	24	R. H. P. O. sarai Police station
Manem	6	30	Village
Hari ganiwan	2	32	Hindu shrine
Gund	5	37	P. O. sarai
Kislan	4	41	Village, road to Pahalgam

Gaganager	3	44	Camping ground
Sheetkari	5	49	Do
Thajiwas	1	50	Do
Sona Marg	1½	51½	Sanitoriam P. O. T. O. Sarai
Baltal	9	60½	R. H Sarai Hight 9450 Ft.
Sangam	6	66½	Junction of river Amaravati with Panchatarani
Amar Nath cave	5	71½	Hight 13000 Ft. Famous Hindus hrine

Pahalgam to Amar Nath ji Cave via Astanmarg

Name of each Place of importance	Distance in miles between places	Total No miles from Pahalgam	Remarks
Pahalgam	0		
Chandanwari	8½	8½	
Astan Marg	4	12½	
Sasakuti top	3	15½	Ht. 13860 Ft.
Hatyara talave	½	16	A Famous lake
Posh Pathre	1	17	A perilous descent
Kel Nar	1	18	
Nagarpal	2	20	
Panchatarni	1½	21½	
Amar Nath cave	4	25½	

ओं नमः शिवाय वरदाय

"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते"

इस भारतीय प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए हम ग्रन्थ आरम्भ करने से पूर्व अमरेश्वर के स्तुतिरूप कुछ एक पद्य यहां रख कर उस सर्वशक्तिमान दयालु से एक वरदान मांगते हैं कि, 'मानव की उच्छृ-खलता एवं पारस्परिक रक्तपिपासा शान्त हो जाए, प्रत्येक व्यक्ति में रजस् तथा तमस् की प्रवृत्तियां विरत हो कर आत्मिक शान्ति का विकास हो। त्रिविध ताप एवं अभिशाप शान्त हों, भारत में शान्ति का राज्य हो और विश्व में शान्ति का अखण्ड निवास हो।'

वरा[1]भये शंखपद्मौ मृदङ्गो वराभयेऽमृतकुम्भो भुजेषु।
यस्यामृताङ्गामृतपूर्णरूपामरेश्वरस्यामृतसेचनस्य ॥१॥
स्वानन्दतस्तस्य कालेन ग्रस्ता देवाः कथा का मृतिधर्मभाजां।
यतो जरामृत्युविवर्जितोऽसि शक्त्यामरावत्यभिधानया त्वं
ध्यानं ततस्ते सविशेषमेतद्भक्तेषु यागानुभवोर्जितेषु ॥२॥
हृन्मे गुहासरनाथस्य ते यदारोहणाच्चाप्यवरोहनाच्च।
विकासिते ब्रह्मरन्ध्रान्तरे च भक्त्या क्रमेणात्र सहस्रपत्रे ॥३॥
आकर्षिणी शक्तिरथ करन्ध्रं भित्त्वोत्थिता द्वौ दश चाङ्गुलीनां।
पीत्वामृतं सोमकलामृतं त्वद्भक्तस्य चित्तममृतौघरूपं।
स्वशक्तिपातादमृतोर्मिमौलेर्नवां समावेशदशां च कृत्वा ॥४॥

---

1. यह पद्य श्री मुकुन्दराम त्रिक (तिकू) की रचना है। इन का समय १६४० विक्रम है। इन के विषय में एक किम्वदन्ती प्रचलित है कि ये आजन्म निरक्षर भट्टारक थे। वृद्धावस्था में इन्हें परदशा का साक्षात्कार हुआ तथा स्वयं ही कविता धारा का प्रवाह इन के हृदय से फूट पड़ा। इन की कविता का संग्रह इन के निजी हस्तलिखित पुस्तक के रूप में, कश्मीर रिसर्च कार्यालय में विद्यमान है। इस की लिपि शारदा में है। कविता में कहीं कहीं छन्दोभङ्ग अथवा व्याकरण की अशुद्धियां पाई जाती हैं परन्तु हम ने यहां पर पद्यों में किसी भी प्रकार की शुद्धि अथवा परिवर्तन न कर कविता की मौलिक सुन्दरता को नष्ट नहीं होने दिया है।

अमृतास्योऽमृतवपुरमृतोद्गारमूर्तिधृत् ।
अमृतौघोऽमृताभश्चामृतमूर्तिमहेश्वरः ॥५॥
अमृतद्रवरूपस्त्वममृताह्वय एव च ।
शशिशेखरधारिस्त्वं शरणं भव नः सदा ॥६॥
आनन्दात्मा त्वं परानन्द मूर्ति
रेतत्स्तोत्रपाठमाहात्म्यतोऽस्मान् ।
आधिव्याध्यादीन् समस्तांश्च रोगान्
कृत्वा नष्टान् दर्शनात्मस्वभावात् ॥७॥
चमत्कारानन्दघन ! परानन्दघनात्मक ।
सम्पादयामृतघनान् सदेहान्नोऽमृतात्मक ! ॥८॥
कृत्वाजरामरानस्मान्नानन्दघनविप्लव-
श्चमत्कारकरो नित्योदित आस्ते सदाशिवः ।
कल्पान्तलहरीष्वेवं यथापूर्वमकल्पयत् ॥९॥
शक्तिपातवशतो विशत्यणुः स्वस्वभावममलं शिवात्मकं ।
यस्य सोऽमरवरार्चितामृतस्यन्दनेश ! शरणं भवाञ्जसा ॥१०॥
निजभक्तमानसनिवाससुस्थितः शशिमण्डलोद्भवसुधां निपाययन् ।
स्वविमर्शशालिजनताविमुक्तिभूरमृताङ्गशर्व ! शरणं भवाञ्जसा ॥११॥
परपीयूषरसेन पूरयन्निखिलं विश्वमनन्तशक्तिभिः ।
महिमानमुदीरयन् परममृतोद्गार विभो ! भवाविता ॥१२॥
आधिव्याध्यादीन् कषन् द्राक् समूलान्भक्तान् कुर्वंश्चिद्घनानन्दरूपान् ।
एतत्पाठस्तावकांश्चामृतास्य ! शम्भो भूयाः पालको नः प्रपन्नान् ॥१३॥
हिमसुधांशुनिभं रुचिराननं विशदरत्नविभूषितविग्रहम् ।
भवरुजार्तिजदोषजिघांसयामृततनुं शरणं समुपैम्यहम् ॥१४॥
निजपरामृतसारचमत्कृतौ पटुमतीन् गलिताखिलबन्धनान् ।
विततभक्तिपवित्रितमानसानमृतसेचन ! देव कुरुष्व नः ॥१५॥
सर्वेऽमरास्त्वद्वपुषि प्रलीनाः सुखस्वरूपा न विभेदभाजः ।
यतः परेशामृतमूर्तिदेवामृतैकमूर्तीन् कुरु नस्ततोऽद्धा ॥१६॥
अस्माकमात्मास्यमरेश देवाजरामरान्स्वात्मवदेव शम्भो ! ।
विधेहि नस्त्वत्पदयुग्मपद्मभृङ्गैकवृत्तीन् गलितैनसोऽतः ॥१७॥

नित्योदितानन्दघनः सर्वामृतधरो भवान्।
कल्पान्तलहरीष्वास्ते चमत्कारी सदाशिवः ॥१८॥
स्रष्टेः पूर्वं यथा शुद्धः चिद्घनः स्वनिरावृतः।
विधेहि नस्तथेदानीं निजात्मामर्शशालिनः ॥१९॥
अमृतेशः परः शम्भुर्भक्तसंकोचहारकः।
स्तुतो मुकुन्दरामेण भूयाद्भवभयापहः ॥२०॥

अथ मृत्युञ्जयस्तोत्रम् ॥

नमो देवाय रुद्राय शर्वाय च नमो नमः
ईशानाय वृषाङ्काय भीमाय च नमो नमः।
महादेवाय गुप्ताय वासुदेवपराय च।
वासुदेवाय शान्ताय तथोमापतये नमः ॥
कृत्वा तुषारलिङ्गस्य पूजां भक्तिपुरःसरं।
प्रार्थयेदञ्जलिं बद्ध्वा मूर्ध्नि भक्तिसमन्वितः ॥
प्रणतोऽस्मि महादेव ! प्रपन्नोऽस्मि सदाशिव !
निवारय महामृत्युं मत्युञ्जय ! नमोऽस्तु ते।
गौरीपते ! विरूपाक्ष ! शरणागतवत्सल ! निवारय०
कालकूटधर शम्भो ! कालकालकृपानिधे ! निवारय०
ऋग्यजुसामरूपेश ! त्रिलोचन ! सुरोत्तम ! निवारय०
अनन्तपूर्णकल्याण ! कल्याणगुणभाजन ! निवारय०
चन्द्रशेखर ! विश्वात्मन् ! करुणाकर ! शङ्कर ! निवारय०
सुरेश्वर ! सुराराध्य ! शर्व ! त्रिपुरनाशन ! निवारय०
पाशाङ्कुशधर श्रीमान् ! नमोडुम्बरभूषण ! निवारय०
भस्मोद्भासितसर्वाङ्ग ! हर निर्वृत्तकल्मष ! निवारय०
प्रदर्शय महाशूलिन्संसारभयनाशक ! निवारय०
भुजङ्गभूषण श्रीमान्वृषभध्वज विश्वप ! निवारय०
प्रसीद गिरिजानाथ करुणारसवारिधि ! । निवारय०
अनाथनाथ देवेश शरणागतवत्सल। निवारय०
पाहि मां त्राहि मां नाथ ! त्वमेव परमा गतिः। निवारय०

छपते छपते

१. योग शास्त्र में वर्णित क्रम के आधार पर एक योगी मूलाधार से आरम्भ करके स्वाधिष्ठान, कुण्डलिनी, मणिपूर, अनाहत नामक चक्रों से अपनी आत्मा को हठ एवं काठिन्य से आगे २ प्रेरित करता हुआ अन्त पर सहस्रार नामक अमरगुफा में पहुँच कर अमा कला से नित्य टपकने वाले अमृतस्राव का पान करके शिवरसमय ही बन जाता है, इसी प्रकार यात्री वृन्द भी गणेशबल से आरम्भ करके पहलगाम, चन्दनवाडी, वावजन, पञ्चतरणी इन स्थानों से होता हुआ अन्त में परमशिवधाम अमरेश्वरगुफा में पहुंच कर वहां टपकने वाली अमर धारा का पान करके अमरता का विषय बन जाता है।

२. काश्मीर के बडे बडे योगिवर अमरगुफा में रहते हुए परमशिवधाम का लाभ करते रहे हैं। जिन में मे एक प्रसिद्ध मुस्लिम सन्त भी जो महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल तक इसी गुफा में लगभग १२ वर्ष की अवधि तक तपस्या करता हुआ परमशिव का साक्षात्कार करता रहा। इसके अतिरिक्त भारत के उच्चकोटि के संत परमहंस इस स्थान पर कृतकृत्य होते रहे हैं। इन में गुरुनानक, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि प्रसिद्ध हैं। श्रीरामतीर्थ जी ने भी अपनी यात्रा के समय आनन्दातिरेक से विभोर होकर निम्न उद्गार प्रकट किये हैं।

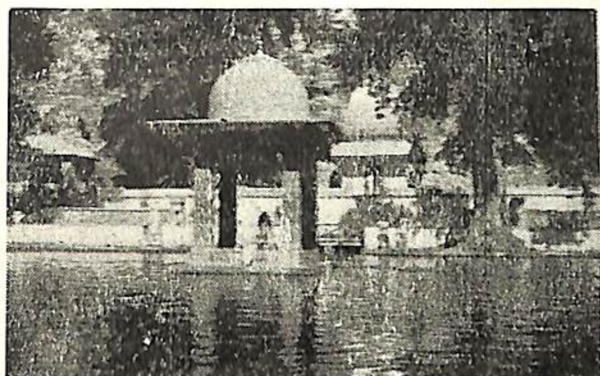
बर्फ जिसमें सुस्ती से जुडता है लाशय,
अमरलिङ्ग इस्तादह चेतन की जा है।
मिले यार हुआ सब फासला तय,
यही रूप दायम अमरनाथ का है।
वह आये उपासक तय्युन मिटा सब,
रहा राम ही राम मैं तू मिटा सब॥

३. अमरेश तीर्थ की प्राचीनता काश्मीर के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ नीलमत पुराण के तीर्थ प्रकरण में लिखे हुए अधोनिर्दिष्ट पद्यांश से भी प्रमाणित होती है :—

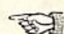
'अमरेशे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्'

नी० पु० MS रिसर्च

पृष्ठ १०६ पंक्ति २५ में पशुपतये देवाय के बाद उग्राय देवाय भीमाय देवाय महादेवाय ईशानायदेवाय पढ़ें, साथ ही नवदल श्राद्ध की असंख्याता १०ऋचा पृष्ठ १०८ पर देखिये।

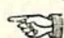


Martand मटन (मा





Pahalgam पहलगाम (भृगु





Chandanwari
चन्दनवाडो (स्थाण्वाश्र



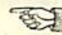


Wavjan वावजन (वायुवर्जन)
(Three Peaks)



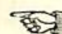


Sheshnag शेषनाग (सुश्रुम नाग)





Panchatarani
पंचतरणी (पंचतरंगिणी)



श्री अमरनाथ माहात्म्य

हिन्दी अनुवाद ।

ओं नमः शिवाय वरदाय ॥

ओं[1] नमः शिवाय निश्शेषक्लेशप्रशमशालिने ।
त्रिगुणग्रन्थिदुर्भेदभवबन्धविभेदिने ॥१॥

भैरवी :— श्रावं श्रावं महादेव महिमानमनुत्तमं ।
पुण्यमनन्तनागस्य सूर्यक्षेत्रस्य वै तथा ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यात्राममरनाथजां ।
रस[2]लिङ्गस्य माहात्म्यं श्रुत्वा मुच्येत बन्धनात् ॥३॥
साङ्गामकृत्वा देवेश ! यो लिङ्गं पश्यति प्रभोः ।
स कां गतिमवाप्नोति वद शीघ्रं दयानिधेः ! ॥४॥

समग्र (आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक) दुःखों को नष्ट करने वाले और तीन गुणों (सत्व-रजस्-तमस्) की अच्छेद्य गांठ संसार को तोड़ने वाले शिव को प्रणाम हो ।

भैरवी :— हे महादेव ! सूर्यक्षेत्र और अनन्तनाग की पवित्र एवं अनुपम महिमा मैं बहुत बार सुन चुकी, अब मैं अमरनाथ जी की यात्रा का वर्णन सुनना चाहती हूँ, क्योंकि रसलिङ्ग की महिमा को सुन कर मनुष्य बन्धन से छूट जाता है। हे देवों के स्वामी ! तथा दया के समुद्र ! मुझे शीघ्र बतला दीजिये कि साङ्गोपाङ्ग यात्रा किये बिना जो मानव रसलिङ्ग का दर्शन करता है उसकी क्या गति होती है ? ।

---

1. क, ख, ग पुस्तक पाठ । 2. एक पंक्ति ग, ख पुस्तक पाठ ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यात्राममरनाथजां ।
यां श्रुत्वापि नरः पुण्यमाप्नुयात्तीर्थजं प्रिये ! ॥५॥
यात्रामकृत्वा देवेशलिङ्गं पश्यति यो नरः ।
स याति नरकं घोरं तीर्थद्रोहे च पातकी ॥६॥
आदौ शोडश[1]क्षेत्रे च शिव[2]पारे ततः परं ।
ततो परस्पृश्य पद्[3]दृष्टौ पुण्ये गङ्गाम्भसि प्रिये ! ॥७॥
पद्म[4]पुरे सिद्ध[5]क्षेत्रे स्नात्वा यायादतः परम् ।
वा[6]रेशे रुद्रगङ्गायां स्नानं कृत्वा महेश्वरि ॥८॥
ततो यव[7]त्यां मिष्ठो[8]देऽव[9]न्तिकासिद्धक्षेत्रके ।
ततो परस्पृश्य च जलं महा[10]नागस्य सुन्दरि* ! ॥९॥
ज्येष्ठा[11]षाढां ततः स्नात्वा हरिद्रं गणपं श्रयेत्† ।
हरिद्रा[12]ख्यं गणपतिं नत्वा स्नात्वा व्रजेत्पुनः ॥१०॥

हे देवि ! सुनो मैं अमरनाथ यात्रा के विषय में कहता हूँ जिस को सुन कर भी मनुष्य तीर्थ पर जाने से प्राप्त होने वाले फल को पा लेता है। जो मनुष्य (माहात्म्य वर्णित) यात्रा करने के बिना ही रसलिङ्ग का दर्शन करता है उसे घोर नरकों में जाना पडता है और साथ ही उसे तीर्थद्रोह का पाप भी लगता है। हे प्रिये ! पहिले षोडशक्षेत्र में तदनन्तर शिवपार में फिर पद्दृष्टि के पवित्र गङ्गा जल में आचमन कर पद्मपुर तथा सिद्धक्षेत्र में नहा ले और आगे चले। हे महेश्वरि ! वारेश की रुद्रगङ्गा में नहा कर यवती, मिष्ठोद, अवन्तिका तथा सिद्धक्षेत्र में भी स्नान करे। हे सुन्दरि ! फिर महानाग में जल में आचमन

अङ्क चिह्नित स्थानों के आधुनिक नाम यह हैं :—

1. पुरायार। 2. शिवपोर। 3. पान्द्रेंठन। 4. पाम्पोर। 5. स्यदयार। 6 भारुस। 7. ज्यवब्रार। 8. मिठवनि। 9. वंतिपोर। 10. मेहर नाग। 11. ख पु० संगम। अथवा हमारे क पुस्तक के अनुसार आधुनिक 'गीरू' के पास वाला कोई तीर्थस्थान। 12. हारी।

*'महावारेश्वरे तथा' इति ग पु० पाठ। †ख, क पुस्तक में अधिक पाठ।

बलि[1]हारे महाक्षेत्रे स्नात्वा यायादतः परं।
वागा[2]श्रमे हस्ति[3]कर्णं नत्वा परपृश्य वा व्रजेत् ॥११॥
चक्रे[4]शे च ततः स्नायात्ततो देवक[5]तीर्थके।
स्नात्वा पुनः हरि[6]श्चन्द्रे तीर्थं यायात्ततः प्रिये! ॥१२॥
स्थूलवाटे ततः स्नात्वाऽमृततीर्थे महेश्वरि।
ततो गच्छेत्सूर्यस्य गुहा[7]वाटं महेश्वरि! ॥१३॥
तत्र लम्बो[8]दरे स्नानं कुर्यादेवमतन्द्रितः!
ततः सूर्या[9]श्रमं गत्वा सूर्यगङ्गाजले शुभे ॥१४॥

एवं ज्येष्ठाषाडा में नहा कर हरिद्रा में विद्यमान गणपति के पास जाए और उसे प्रणाम कर वहां (विद्यमान कुण्ड में), एवं बलिहार नामक महातीर्थ में स्नान कर यात्रा करता जाए। वागाश्रम में हस्तिकर्ण को नमस्कार करके अथवा जल में आचमन करके आगे चलता जाए। फिर चक्रेश एवं देवकीतीर्थ में स्नान करे। हे प्रिये! हरिश्चन्द्र में स्नान करके आगे चले। हे महेश्वरि! फिर स्थूलवाट के अमृत तीर्थ में नहा कर सूर्यदेवता से आश्रित गुहावाट के स्थान पर चला जाए। वहां सावधान होकर लम्बोदरी नदी में स्नान करे। अनन्तर सूर्य आश्रम जाकर पवित्र सूर्यगङ्गा के पानी में

स्नात्वा दत्वाचविधिवन्मुच्यते ब्रह्महत्यया।
*ततः सख[10]रसमासाद्य स्नात्वा तत्पादमूलके ॥१५॥
सम्पूज्य गणपं यायाद्भद्रो[11]रसि महेश्वरि!।
†हयशीर्षाश्रमे पुण्ये स्नात्वा ह्यु[12]तरनागके ॥१६॥
बद्धोरसि पुनर्गङ्गामवगाह्य महेश्वरि!।
गच्छेत् सरल[13]के ग्रामे तत्र स्नात्वा पुनः प्रिये! ॥१७॥

---

1. बालियार। 2. वागहोम। 3. हसिखन। 4. चक्रधर। 5. दिवकीयार। 6. चन्दनयार। 7. सिरिग्वफबोर। 8. लेदर। 9. सिरहोम। *तीन पंक्तियां क, ख, ग पुस्तक में अधिक पाठ। 10. सखरस। 11. भदुर। †कमलनाग। 12. ओतरनाग। 13. सलर।

ततः खिल्या[1]यने ग्रामे सम्पूज्य विधिवद्धरिम् ।
नारायणं महा[2]क्षेत्रे चावगाह्य पुरातनम् ।।१८।।

नहाने और विधिपूर्वक दान देने से ब्रह्महत्या पाप से छुटकारा मिल जाता है। हे महेश्वरि! फिर सखरस स्थान पर पहुँच कर स्नान करके उसकी उपत्यका में स्थित गणेश जी की अर्चना करके बद्धोरस स्थान पर चला जाए। हे देवि! हयशीर्षाश्रम में विद्यमान उत्तरनाग में तथा बद्धोरस में विद्यमान गङ्गा में भी नहाकर सरलक ग्राम में जाए। अरी प्रिये! फिर वहां स्नान करके खिल्यायन ग्राम में विधिवत् नारायण की अर्चना करे। महाक्षेत्र में स्थित प्राचीनतम नारायण तीर्थ में स्नान करके

महाग्रामे माम[3]लके गणेशं समुपाश्रयेत् ।
दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं स्नात्वा मामेशवारिणि ।।१६।।
स्नात्वा भृगु[4]पतेः क्षेत्रे नीलगङ्गाजले ततः ।
स्थाण्वा[5]श्रमे नदींपुण्यां कोटिजन्माघनाशिनीम् ।।२०।।
*आरुहेद् गिरिपे[6]षं तं सर्वपाप प्रणाशनम् ।
गच्छेत सुश्रुम[7]नागन्तु† स्नानं कृत्वा विधानतः ।।२१।।

मामलक नामवाले प्रतिष्ठित ग्राम में गणेश जी की अर्चना करे। मामेश्वर लिङ्ग का दर्शन करके मामेशकुण्ड के जल में नहाकर भृगुपति क्षेत्र में तथा अनन्तर नीलगङ्गा के जल में नहाये। फिर स्थाण्वाश्रम में विद्यमान, करोडों जन्मों के पापों को नाश करने वाली नदी को पार करके, सब पापों का नाश करने वाले पेषगिरि पर चढे। फिर जाकर सुश्रुमनाग में विधिवत् स्नान करके वायुवर्जन में स्नान करने से करोडों पुण्यों का फल प्राप्त होता है। वहां वायुवर्जन देश में सुन्दर सुन्दर मठि‡कायें बनाई जाती है।

---

1. बालखयलन। 2 ब्वलर। 3. मामलीश्वर। 4. पहलगाम। 5. चन्दनवोर। 6. पिषबाल। 7. शिशिरमनाग।

*एक पंक्ति क, ख, ग पुस्तक अधिक पाठ।

†स्वाश्रम नाग ग पु० पाठ। ‡छोटे छोटे आश्रम जैसे।

*वा[1]युवर्जनने स्नात्वा कोटि पुण्यफलं लभेत् ।
†वायुवर्जन देशस्य कुवन्ते मठिका शुभा ॥२२॥
ततः पञ्चत[2]रङ्गिण्या जलं तदवगाह्य वै ।
आरुह्य पर्वतं ! देवि ! गर्भागा[3]रस्य मध्यतः ॥२३॥
अवरुह्याम[4]रावत्यां स्नानं भस्माङ्गलेपनम् ।
विभूतिसितदेहस्तु नृत्यमानो दिगम्बरः ॥२४॥
आरुहेत्पर्वतगुहां महापातकनाशिनीम् ।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या सुधालिंगं सनातनम् ॥२५॥
नरो न लिप्यते पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ।
दर्शनात्स्पर्शनाद्वापि पूजनाच्चापि वन्दनात् ॥२६॥

अनन्तर पंचतरंगिनी के जल में नहा कर पर्वत पर चढे और गर्भागार के बीच में से अमरावती में उतर कर स्नान करके विभूति से शरीर के अंगों का लेप करे। विभूति से शरीर को सफेद करके, वस्त्र-हीन होकर नाचता हुआ, भयंकर पापों को नाश करने वाली पर्वतीय गुफा की ओर चढे। वहां शास्त्रोक्त विधि से भक्ति पूर्वक प्राचीन सुधा-लिंग को प्रणाम करने से मनुष्य करोडों जन्मों से भी उत्पन्न पापों से लिप्त नहीं होता है। अमरेश लिंग के दर्शन से, स्पर्शसे, अर्चना से अथवा प्रणाम से भी मनुष्य सब पापों से छूट जाता है।

अमरेशस्य लिंगस्य मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।
ततो[5] ययान्महाग्रामे मामलाख्ये महेश्वरि ! ॥२७॥
महागणपतिं तत्र पूजयेद्बलिभिः प्रिये ।
विविधैर्गन्धधूपैश्च मोदकैश्च महेश्वरि ॥२८॥
पूपोपहारैः पुष्पैश्च पूजनीयो गणाधिपः ।
प्रसाद्य गणपं तत्र नानाबल्युपहारकैः ॥२९॥

---

*वायूजन ग पुस्तक पाठ। 1. वावजन। †यहां से ६ पंक्तियां क, ख, ग पुस्तक में अधिक पाठ। 2. पंचतरणी। 3. गर्भयात्रा। 4. ओम्ब-रावती। 5. ६ पंक्तियां क, ख पुस्तक में अधिक पाठ।

प्रायान्नवदले[1] गंगां यष्टिं तत्रार्पयेद्बुधः ।
षट् स्नानानि वितस्तायां प्रोक्तानि जगदम्बिके ! ॥३०॥
सप्तादश स्थलस्थानि स्नानान्यन्यानि सुन्दरि !
त्रयोविंशाभिधा यात्रा स्मृता ह्यामरनाथगा ॥३१॥
एवं कृत्वा नरो यात्रां पश्येल्लिंगं रसात्मकं ।
स याति भैरवं[2] क्षेत्रं यत्र नास्ति कृताकृतम् ॥३२॥

हे महेश्वरी ! फिर मामलक नामक पवित्र ग्राम में जाकर नाना प्रकार की बलियों से महागणपति की पूजा करे । हे महेश्वरी ! गणेश जी की अर्चना नाना प्रकार के तिलक, धूप, लडडू, पूडियां तथा फूल इत्यादि पदार्थों से करनी चाहिये । वहां बलि तथा उपहारों से गणेश को प्रसन्न करके नवदल में विद्यमान गंगा पर जाकर विद्वान मनुष्य को अपना दण्ड दान देना चाहिये । हे जगन्माता ! वितस्ता में छः स्नान तथा अन्य स्थानों पर विद्यमान कुण्डों में सतरह स्नान करने की विधि स्मृतियों में कही गई है । अमर नाथ की यात्रा में तेईस तीर्थों के दर्शन करने होते हैं अतः इस प्रकार सम्पूर्ण यात्रा करके ही रसलिंग का दर्शन करने से मनुष्य उस भैरव दशा को प्राप्त कर लेता है जिसमें पुण्य अथवा पाप की कोई सत्ता ही नहीं होती है ।

इति श्रीभृङ्गेश संहितायां दक्षिणपार्श्वविषयोपजाततीर्थसंग्रहे भैरव भैरवीसंवादे यात्रावर्णनं नाम प्रथमः परिच्छेदः ।

भैरवी :— इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थं खिल्यायनं परं ।
ग्रामे खिल्यायने पुण्ये तीर्थं नारायणाभिधम् ॥३३॥
यदभूद् भगवन्सर्वं तन्मे त्वं कृपया वद
भैरवः :— शृणु वक्ष्ये महादेवि ! तीर्थं खिल्यायनं परम् ॥३४॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयात् ।
पुरा महर्षयः सिद्धा बालखिल्याभिधाः शिवे ! ॥३५॥

---

1. 'नवदल' यह स्थान वर्तमान त्राल ग्राम के समीप ही है । इस का परिचय आगे दिया जायेगा । 2. भैरव दशा का वर्णन हमारे शैवशास्त्रों में विस्तार से किया गया है संक्षेप में इससे शुद्ध प्रकाश विमर्शमयो परशिव दशा अभिप्रेत है ।

चेरुस्तपो दुश्चरन्ते नियमेनोर्ध्वरेतसः ।
निराहारा यतात्मानः पदाङ्गुष्ठाग्रसंस्थिताः ॥३६॥
समाधिलीना ह्यभवन् सहस्रं परिवत्सरान् ।
विष्णुध्यानपरासक्ताः शान्तात्मानो महौजसः ॥३७॥
चिरेण भगवान्विष्णुर्दर्शनमीयिवान् प्रभुः ।
समाधिं मुक्त्वा दृष्ट्वा तं भगवन्तं सनातनम् ॥३८॥

श्रीभृङ्गेशसंहिता में विद्यमान, दक्षिण पार्श्व देश में स्थित, तीर्थों के संग्रह प्रकरण में वर्णित, भैरव तथा भैरवी के वार्तालाप में यात्रा वर्णन नाम वाला पहला परिच्छेद समाप्त हुआ।

भैरवी :—हे भगवान ! अब मैं खिल्यायन तीर्थ के विषय में सुनना चाहती हूँ। पवित्र खिल्यायन ग्राम में नारायण तीर्थ के निर्माण के समय जो कुछ भी हुआ था कृपा करके वह सारा कहिये।

भैरव :—अरी महादेवी ! सुनो अब मैं पवित्र खिल्यायन तीर्थ का वर्णन करता हूँ जिस को सुनकर मनुष्य घोर पापों के समूह से छुटकारा पा-लेता है। हे शिवे ! प्राचीन समय में बालखिल्य नाम वाले सिद्ध महर्षि ऊर्ध्वरेता बन कर कठिन तप करते थे। वह अत्यन्त तेजस्वी लोग हजारों वर्षों तक आहार के बिना, इन्द्रियों को जीतकर, पैर के अंगूठे के अग्र-भाग पर खडे होकर, तथा समाधि लगाये हुए शान्त आत्मा से विष्णु के ध्यान में लगे हुए थे। चिरकाल के अनन्तर भगवान विष्णु ने उन्हें दर्शन दिया। सनातन भगवान को देखते ही वह ऋषि लोग समाधि छोड सहसा उठ उठ कर दण्डवत प्रणाम करने लगे।

उत्थायोत्थाय सहसा प्रणम्य दण्डवत् स्थिताः ।
नीलजीमूतसंकाशं प्रफुल्लजलजेक्षणम् ॥३९॥
शंखचक्रगदापद्मपाणि पापहरं हरिं ।
गरुडस्थं परं विष्णुं, गिरा परमयैडयन् ॥४०॥
ऋषयः :— "महाविष्णुं प्रभविष्णुं पुराणमादिमृषिं शिपिविष्टं वरिष्ठम् ।
गरीयांसं भारसहं वरिष्टं प्रपद्येम शरणं त्वा गरिष्ठम् ॥४१॥

वेदात्मकं वेदविदं पुराणं वरं वरेण्यं वरदं त्वां शरण्यम् ।
हिरण्यगर्भमादिदेवादिदेवं हिरण्यबाहुं शरणं त्वां प्रपद्ये ॥४२॥
त्रिलोकनाथं त्रिलोकपालेशमीशं लोकाधारं लोकवन्द्यं महेशं ।
लोकेश्वरं विश्वरूपं पुराणं लोकात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४३॥
वितत्य मायाजवनीमुग्ररूपां क्षणं बालं तरुणं वै क्षणं त्वां ।
क्षणं पुमांस्त्रीरूपं क्षणं वा महानटं शरणमुपैमि दिव्यम् ॥४४॥
प्रसार्य जालं रागद्वेषादितन्तुं धर्तुं मनः पक्षिणं प्राणमध्ये ।
दशग्राहं परिगृह्णाति सद्यो महानिषादं शरणं त्वां प्रपद्ये ॥४५॥
अनाद्यन्तं सवितारमजेशं पुरातनं नूतनं जायमानम् ।
वेदान्तवेद्यं सांख्ययोगेन योग्यं भूयो भूयः शरणं त्वां प्रपन्नाः" ॥४६॥

वह नीले बादल के समान, विकसित कमल जैसी आंखों वाले, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी, पाप हारी तथा गरुड़ पर स्थित विष्णु को देखकर पवित्र वाणियों से स्तुति करने लगे।

ऋषि :— "हे भगवान्! हम, सर्वशक्तिमान, सनातन, आदिपुरुष, शक्तिवृन्द के आधार बने हुए, पूजनीय, गौरवशील, जगत का भार धारण करने वाले, उच्च तथा आदरणीय आपकी शरण में आये हैं।

वेद स्वरूप, वेदों के ज्ञाता, प्राचीन, पवित्र, अनुतर, वर देने वाले, शरण देने वाले, हिरण्यगर्भ, देवताओं के भी आदिदेव तथा ऋतबाहु आप की शरण में आये हैं। तीनों लोकों के स्वामी, लोकपाल, ईश्वर, लोक के आधार, लोकों से नमस्करणीय, महेश, लोकेश्वर, विश्वरूप, पुराण तथा लोकमय आप की शरण में आये हैं।

हे भगवन्! आप एक महानट की भान्ति कठिन माया की जवनिका फैलाकर क्षणमात्र में ही बालक, युवा, पुरुष तथा स्त्रीरूप बन जाते हैं अतः हम आपके ऐसे दिव्यरूप की शरण में आये हैं। हे भगवन्! आप एक भील के समान राग द्वेष इत्यादि तारों वाले जाल को फैलाकर प्राणरूपी पक्षी को फंसाने के लिए दस इन्द्रियों की रस्सी पकड़े हुए हो अतः हम आप की शरण में आये हैं। हे भगवन्! हम बारबार अनादि, अनन्त, सृष्टिकर्त्ता, प्रकृति के नियामक, प्राचीन अथवा नवीनरूप

से प्रकट होने वाले, वेदान्त से ज्ञेय तथा सांख्य योग द्वारा जानने के योग्य आपकी शरण में आये हैं।"

इति स्तुत्वा महेशानं महाविष्णुं महेश्वरं।
प्रणम्य पतिता भूमौ पुनरुत्थापिताः प्रिये ! ॥४७॥
उवाच तांस्तदा विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा।
तपसानेन तुष्टोऽस्मि वरयध्वं वरं पुनः ॥४८॥
ददामि दुर्लभं विप्रा देवासुरसुदुर्लभम्।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य विष्णोरमित तेजसः ॥४९॥
प्रत्यूचुस्तं[1] महादेवं बालखिल्या महर्षयः।
त्वद्दर्शनात्परो कोऽन्यो वरः श्रेष्ठो महेश्वर ! ॥५०॥
तथापि वरदाद्देवात् वृणीमस्तीर्थमुत्तमम्।
यत्र वासान्महाविष्णो ! सिद्धिं प्राप्नुम उत्तमाम् ॥५१॥
श्रुत्वा तेषां वचः सौम्यमानन्दाश्रुपरिप्लुतः।
दृष्टिं पदोः समाधाय गङ्गां समुदचालयत् ॥५२॥
पावयश्चाश्रमं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्वयं तस्थौ च तत्रैव ग्रामो खिल्याभिधोऽभवत् ॥५३॥
आभूतसंप्लवं[2] तावत् इदं परमपावनं।
बालखिल्याभिधं तीर्थं भविष्यति न संशयः ॥५४॥

हे प्रिये ! इस प्रकार वह लोग महेश्वर विष्णु की स्तुति करके प्रणाम करते हुए पृथ्वी पर गिर गये और भगवान ने उन्हें उठाया। अनन्तर भगवान मेघ के समान गम्भीर वाणी द्वारा उनसे कहने लगा। "मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो गया हूँ तुम कोई वर मांगो। यद्यपि वह वर देवों तथा राक्षसों से भी दुष्प्राप्य हो मैं तुम्हें अवश्य दूंगा। अत्यन्त तेजस्वी विष्णु के उन वचनों को सुनकर उन बालखिल्य नाम वाले महर्षियों ने उत्तर दिया, हे ईश्वर ! आपके दर्शन से बढ़कर और कौनसा वर हो सकता है तथापि वरद होने के कारण हम आपसे एक उत्तम तीर्थ की

1. क, ख, ग पु० पाठ। 2. पांच पंक्तियां ख, ग, घ, पु० पाठ।

याचना करते हैं, जहां पर निवास करने से हमें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी। उन सुन्दर वचनों को सुनकर आनन्द से आंसू भर कर भगवान ने अपने चरणों पर दृष्टि डाली और गङ्गा को प्रवाहित किया। तथा साथ ही उन आत्मज्ञानी मुनियों के आश्रम को पवित्र करने के लिए उसी खिल्यायन ग्राम में स्वयं भी निवास किया जिस से यह सारा ग्राम ही खिल्य नामक बन गया। यह परम पवित्र तथा विघ्नों से रहित स्थान निस्संदेह बाल खिल्य नामक तीर्थ बन जायेगा।

इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुर्गतोऽन्तर्ध्यानमच्युतः।
बालखिल्या यतश्चेरुस्तपः परमदारुणम् ॥५५॥
ततस्तु प्रथितो ग्रामो बालखिल्याभिधः परः।
नारायणपदोद्भूतं क्षेत्रं यदभवत्किल ॥५६॥
ततश्च प्रथितं क्षेत्रं तीर्थं नारायणाभिधम्।
महापातकयुक्तोवा युक्तोवा ह्युपपातकैः ॥५७॥
सद्यः प्रमुच्यते स्नानात्क्षेत्रे नारायणाभिधे।
नारायणाभिधे क्षेत्रे स्नातव्यमविशङ्कया ॥५८॥
घोरात्कलिमलादेवि! भीरुणा पुरुषेण ह।
आजन्म यदि देवेशि! पीयते मदिरा मुदा ॥५९॥
माशमात्रं जलं तत्र पीत्वा मुच्येदसंशयम्।
अभक्ष्यभक्षणादेवि तथापेयस्य पानतः ॥६०॥
खिल्यायने प्रमुच्यन्ते जलपानान्न संशयः।
नारी वा पुरुषो वापि ग्रामे खिल्यायने परे ॥६१॥
नारायणाभिधे क्षेत्रे स्नात्वा मुच्येदसंशयम्।
मातृस्वसृपितृस्वसृभ्रातृ जायाभिकामकः ॥
स्नात्वा दत्वाच विधिवन्मुच्यते वर्षतः प्रिये ॥६२॥

भगवान विष्णु यह बात कह कर उसी समय अन्तर्ध्यान हो गये। जिस कारण बालखिल्यों ने इस स्थान पर घोर तपस्या की है अतः यह ग्राम ही बालखिल्य नामक बन गया। जो क्षेत्र नारायण के चरणों से उत्पन्न हुआ है, वह भी तो नारायण नामक तीर्थ से प्रसिद्ध हो गया। घोर

अथवा साधारण पापों से युक्त मनुष्य भी नारायण क्षेत्र में स्नान करने से छूट जाता है। घोर कलियुग की कालिमा से डरने वाले मनुष्य को नारायणक्षेत्र में शंका रहित होकर स्नान करना चाहिये। हे देवेशि! यदि जन्म भर भी मदिरा का सेवन किया जाये तो वहां माशा भर पानी पीने से भी छुटकारा मिल जाता है। हे देवी! इस में भी कोई संशय नहीं कि खिल्यायन में जल पान करने से, अभक्ष्य भक्षण करने अथवा अपेय पान के पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष हो, उत्कृष्ट खिल्यायन ग्राम में विद्यमान नारायण नामक तीर्थ में स्नान करने से निस्संदेह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे प्रिये! माता की या पिता की बहन, अथवा भाई की स्त्री की कामना करने वाला मनुष्य भी वहां विधिपूर्वक स्नान करने से अथवा दान देने से वर्ष भर में ही छूट जाता है।

भ्रूणहा ब्रह्महा वापि वृतीचारी तथैव च।
वृषलीपतिः श्वपाकोवा पुक्कसश्चापि सुन्दरि!॥६३॥
रजस्वलाभिगामी च सूतकाकामुक्तोऽपि वा।
गोघातकः पितृहा च मातृहा सुरसुन्दरि!॥६४॥
गरदो ह्याग्निदश्चैव शास्त्रपाणिर्वनापहा।
स्त्रीघाती बालघातीच मुच्येत्षण्मासतः प्रिये!॥६५॥
पुण्ये खिल्यायने ग्रामे क्षेत्रे विष्णोरनुत्तमे।
स्नात्वा जन्मभवैः पापैः मुच्येद्देवि! न संशयः॥६६॥
प्रायश्चित्तविहीनोऽपि यःकश्चिन्म्रियते शिवे!।
पुण्ये खिल्यायने ग्रामे विष्णुक्षेत्रे परे शिवे!॥६७॥
याति विष्णोः परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचते।
स्नात्वा पीत्वा च विधिवद्विष्णोः क्षेत्रे ह्यनुत्तमे॥६८॥
मुच्यते पातकैर्घोरैः कोटिजन्मसमुद्भवैः।
खिल्यायन समं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥६९॥
खिल्यायन महातीर्थे दुष्करो दानसङ्ग्रहः।
तपः सुदुष्करं देवि! कार्यं तत्रैव सुन्दरि!॥७०॥

खिल्यायने पुष्कलञ्च स्नानपानमपीश्वरि ।
आयुष्यञ्च यशस्यञ्च पुण्यं पापापनोदनम् ॥७१॥

हे सुन्दरी ! गर्भ का घात करने वाला, ब्राह्मण को मारनेवाला, कपट सन्यासी, शूद्राणीका पति, श्वपाक अथवा चन्डाल । हे सुन्दरि ! रजस्वला स्त्री के साथ संग करने वाला अथवा प्रसूता की कामना करने वाला, गोघाती, पितृघाती तथा मातृघाती । हे प्यारी ! विष देने वाला, आग लगाने वाला, शस्त्र हाथ में लेकर धन लूटने वाला, स्त्रीघातक अथवा बच्चे को मारने वाला पुरुष भी छः महीनों में मुक्ति प्राप्त कर लेता है । हे देवी ! पवित्र खिल्यायन ग्राम में विद्यमान विष्णु के उत्कृष्टतम क्षेत्र में स्नान करने से मनुष्य जन्म भर के पापों से निस्संदेह छूट जाता है । हे कल्याणवाली ! यदि कोई मनुष्य प्रायश्चित न करने पर भी पवित्र खिल्यायन ग्राम में विद्यमान परम पवित्र विष्णु के क्षेत्र में केवल प्राणत्याग ही करे वह विष्णु के परमपद को प्राप्त करके दुखों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है । विष्णु के परम-पावन क्षेत्र में शास्त्रोक्त विधि द्वारा स्नान करने से अथवा जल पान करने से करोडों जन्मों से उत्पन्न भयानक पापों से मुक्त होता है क्योंकि खिल्यायन के समान तीर्थ न भूतकाल में था और न भविष्य में बन ही सकेगा । हे देवि ! खिल्यायन नामक परम तीर्थ पर दान देने का भाग्य होना ही कठिन है अतः हे सुन्दरी ! उसी स्थान पर जाकर कठिन तपस्या करनी चाहिये । हे ईश्वरी ! खिल्यायन तीर्थ में जी भर स्नान करना अथवा जल पान करना भी आयु को बढाने वाला, यश को देने वाला, पुण्य को देने वाला तथा पापों को नाश करने वाला होता है ।

खिल्यायने च कथितं तीर्थं नारायणभिधं ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव मुच्यते नात्र संशयः ॥७२॥

पुण्ये खिल्यायने ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे ह्यनुत्तमे ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति स्नानदानजपार्चनैः ॥७३॥

एतद्रहस्यं परमं ग्रामे खिल्यायने परे ।
विष्णोस्तीर्थं शुभं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम् ॥७४॥

अप्रमेयगुणं चैतत्तव स्नेहात्प्रकाशितं ।
इति खिल्यायने ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे परे शिवे ॥७५॥
दर्शनादिं कुरु देवि ! क्षेत्रे नारायणाभिधे ।
इत्येतत्पटलं गुह्यं महापातकनाशनं ॥
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातककोटिभिः ॥७६॥

इति द्वितीयः परिच्छेदः ॥

भैरवी :— श्रुत्वा[1] खेलन माहात्म्यं भवन्मुखविनिस्सृतं ।
हरेः पुण्यस्य तीर्थस्य निवृत्तास्मि भवाम्बुधेः ॥७७॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुण्ये मामलके शुभे ।
क्षेत्रं मामलकं नाम महापातक नाशनम् ॥७८॥

खिल्यायन ग्राम में नारायण नामक तीर्थ कहा गया है इस में कोई संशय नहीं कि उसके दर्शन से अथवा स्पर्श मात्र से ही मनुष्य मुक्त होता है। पवित्र खिल्यायन ग्राम में विद्यमान विष्णु के उत्तम क्षेत्र में स्नान, दान, जप तथा पूजा से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। उत्तम खिल्यायन ग्राम में यह एक अत्यन्त रहस्य की बात है कि यह विष्णु का तीर्थ अत्यन्त गुणों से पूर्ण है जिस को कि मैंने केवल तुम्हारे स्नेह से ही प्रकाशित किया है। हे देवी ! अतः तुम्हें भी खिल्यायन ग्राम में विद्यमान विष्णु के परम उत्कृष्ट नारायण नामक तीर्थ का दर्शन इत्यादि करना चाहिये। इस प्रकार से इस गोपनीय तथा बडे से बडे भी पापों का नाश करने वाले पटल का श्रवण अथवा अध्ययन करने से मनुष्य करोडों महापापों से भी मुक्त होता है।

द्वितीय परिच्छेद समाप्त ।

भैरवी :—आपके मुख से निकले हुए, खेलन ग्राम के अथवा नारायण के पवित्र तीर्थ का माहात्म्य सुन कर मैं भवसागर के पार हो गई हूँ। अब मैं पवित्र तथा सुन्दर मामलक ग्राम में विद्यमान मामलक तीर्थ की वर्णना सुनना चाहती हूँ जो कि बडे बडे पापों को नाश करने वाली है।

---

1. दो पंक्तियां ख, घ पु० अधिक पाठ।

कथं मामलके देव महागणपतेः स्थलं ।
यद्यस्म्यहमनुग्राह्या प्रिया ते वा तदा वद ॥७६॥

भैरव :— शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्थानं मामलकं शुभं ।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते विघ्नराशयः ॥८०॥
पुरा भक्तस्य कस्यापि नाम्नासावभूदघापहा* ।
प्रीतोऽहं तपसा तेन तदर्थञ्च कृतं मया ॥८१॥
स्थानं स्थूलवाटिकायां सर्वविघ्ननिवारणं ।
स्थूलवाटान्महादेवि प्राचलत्स महेश्वरः ॥८२॥
संस्थाप्य गणपं देवि ! द्वास्थं कक्ष्याद्वये शिवे ।
गतः खिलनकादूर्ध्वं दण्डकस्य मुनेःवनम् ॥८३॥
तत्र क्षणञ्च विश्रम्य देवास्तत्रागमन्मुदा ।
दृष्ट्वा देवान्समायातान्मामेति प्रवदन्मुहुः ॥८४॥
देवा मागच्छतात्रैव प्राक्रोशच्च पुनः पुनः ।
श्रुत्वा क्रोशन्तमीशानं देवो गणपतिस्त्वरन् ॥८५॥
स्वयम्भूः सम्भ्रमयुतः पातालादुत्थितस्तदा ।
मामेति प्रवदन्देवान् प्रगृह्य परशुं स्वयम् ॥८६॥
मामेति प्रवदन्देवो महागणपतिस्तदा ।
सर्वे देवास्तु तच्छब्दे लीनाभूवन्महेश्वरि ! ॥८७॥

हे देव ! यदि मैं आपकी दया का पात्र अथवा आपकी प्रियतमा हूँ तो मुझे कहो कि मामलकग्राम में महागणपति का स्थान किस प्रकार बन गया।

भैरव :—हे देवि ! सुनो मैं तुम्हें सुन्दर मामलक स्थान के विषय में कहता हूँ जिसके केवल दर्शन करने से ही विघ्नों के समूह नष्ट होते हैं। पूर्वकाल में यह पापों को हरण करने वाला स्थान किसी भक्त के नाम पर बन गया क्योंकि मैं उसकी तपस्या से प्रसन्न हुआ था और मैंने उसके निवास के लिये स्थूलवाट में सब विघ्नों को निवारण करने वाला स्थान बनाया था। हे देवि ! अनन्तर वहीं मेरा महेश्वर रूप श्रीमहागणपतिको दो कक्ष्याओं के द्वारपाल पद

*इस पाद में छन्द का भङ्ग होता है परन्तु चारों मूल पुस्तकों में ऐसा ही पाठ होने के कारण हम इसमें कोई भी परिवर्तन न कर सके।

पर बिठा कर स्थूलवाट से आगे चल दिया। खिलनक से ऊपर जाकर वह दण्डक मुनि के वन में क्षणमात्र विश्राम के लिये बैठ गया और सारे देवता हर्ष भरे मन से वहीं पर आगये। आये हुए देवताओं को देखकर वह बार बार 'मा मा' (मत मत) इस तरह कहने लगा और बार बार चिल्लाने भी लगा कि अरे देवता लोगो! यहां मत आजावो। महेश्वर की चीख पुकार सुनते ही स्वयम्भू श्रीमहागणपतिजी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक पाताल से ऊपर उठ आया और स्वयं कुल्हाडा हाथ में लेकर देवताओं से 'मा मा' इस प्रकार कहने लगा। उस समय वह महागणपति देवताओं से 'मा मा' यह बोला और हे महेश्वरी! वह सारे देवता लोग उसी शब्द में लीन हो गये।

यतः प्रलीना देवौघा ईश्वरे सच्चिदात्मनि।
ततः स कथितो ग्रामो मामलाख्यो महेश्वरि! ॥८८॥
दृष्ट्वा गणपतिं त्रस्तं पातालादुत्थितं प्रिये।
तदा प्रोवाच तं देवं गणेशं स शिवः स्वयम् ॥८९॥
यस्मान्मामेति शब्दं त्वं कृतवानतिदारुणम्।
तस्मादत्र चिरं तिष्ठ विघ्नसङ्घान्प्रणाशयन् ॥९०॥
यः कश्चिन्मानवो लोके ह्यत्र त्वां पूजयिष्यति।
सर्वान्विघ्नान्विनिर्जित्य सिद्धिं स प्राप्स्यति पराम् ॥९१॥
सर्वान्कामानवाप्नोति पशुं पुत्रं धनं तथा।
मोक्षञ्च प्राप्नुयान्नित्यमर्चन्गणपतिं सदा ॥९२॥
पुत्र[1]कामो लभेत्पुत्रं धनकामो लभेद्धनम्।
विद्याकामो लभेद्विद्यां स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात् ॥९३॥
मोक्षकामो लभेन्मोक्षं सत्यं सत्यं वरानने!
वर्षे वर्षे तु यः कश्चिन्माधवे मासि नित्यश. ।९४।
भूते* शुक्ले ह्युपैष्येकां रजनीं मूर्तिसन्निधौ।
स[2]सर्वां कामनां प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९५॥

जिस कारण इस स्थान पर देवता लोग सत् चित् स्वरूप परब्रह्म

1. ३ पंक्तियां क, ख, ग, पु० अधिक पाठ। *मूल पुस्तक का पाठ ऐसा ही है।
2. १ पंक्ति क, ख, ग, पु० अधिक पाठ।

में लीन हुए इसलिये हे महेश्वरी ! इस ग्राम का 'मामल' यह नाम पड गया। हे प्रिये ! अनन्तर पाताल से उठे हुए त्रस्त गणपति को देखकर वह शिव स्वयं उसे कहने लगा। (हे गणेश) जिस कारण तुमने यहां पर अत्यन्त भयावह 'मा मा' शब्द किया अतः तुम यहीं पर ठहर कर सर्वदा विघ्नों का नाश करते रहो। जो कोई भी संसार का मानव यहां पर तुम्हारी पूजा करेगा वह सब विघ्नों को जीत कर उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। यहां पर नित्य महागणपति की अर्चना करने वाला मनुष्य सब कामनाओं, पशुओं, पुत्रों धन तथा मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है। हे सुन्दर मुखवाली ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि यहां पर पुत्र की इच्छा वाला पुत्र को, धन की इच्छा वाला धन को, विद्या की इच्छा वाला विद्या को, स्वर्ग की इच्छा वाला स्वर्ग को तथा मोक्ष की इच्छा वाला मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। जो[1] कोई भी मनुष्य प्रति वर्ष वैशाख मास की शुक्लपक्ष चतुर्दशी के दिन मूर्ति के सामने रात भर उपवास कर लेता है वह इस संसार में सब कामनाओं को प्राप्त कर, मरने के अनन्तर मुक्ति को पा लेता है।

विनायकचतुर्दश्यां पूजयेद्यो गणेश्वरम् ।
मामेश्वर समीपे तु ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात् ॥९६॥
त्वां पूजयित्वा यो देव ! मामेशं पूजयेन्नरः ।
स पुण्यं फलमाप्नोति न पुनः स्तन्यपो भवेत् ॥९७॥
इति दत्वा वरान्देवो गणेशस्य स्वयं हरः ।
पुण्ये वै दण्डकारण्ये लीनो मामेश्वराख्यया ॥९८॥
दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं पुण्ये मामालके नरः ।
पूजयित्वा गणपतिमश्वमेधमवाप्नुयात् ॥९९॥
स्नात्वा मामेश्वरे कुण्डे दृष्ट्वा मामालकं प्रभुं ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१००॥

1. यह अर्थ काश्मीर में प्रचलित प्रथा के आधार पर लगाया गया। यहां पर आज कल भी वैशाख मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन बडा उत्सव मनाया जाता है और इस दिन को 'गण चोदह' अर्थात गणेश चतुर्दशी कहते हैं।

मामेश्वर[1] समीपे तु दृष्ट्वा गणपतिं शिवे ! ।
विधिवत्पूजयित्वा तं सर्वां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१०१॥
विघ्नेशञ्च समभ्यर्च्य पुण्ये मामालके पुमान् ।
विघ्नेशञ्च पूजयन्तं पुण्ये मामालके नरं ॥१०२॥
न विघ्ना न ग्रहाश्चैव नेतयो जगदम्बिके ! ।
पराभवन्ति तं नेह परत्र च महेश्वरि ! ॥१०३॥
स्वयम्भुवं गणपतिं मामलेश्वरसन्निधौ ।
यः पूजयेन्नरो भक्त्या ज्योतिष्टोममवाप्नुयात् ॥१०४॥
विनायकञ्च मामेशं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुष्कलं ।
फलञ्च सोमयागस्य नरो नियमसंयुतः ॥१०५॥

जो मनुष्य गणेशचतुर्दशी के दिन मामेश्वर के समीप गणेश की अर्चना करे वह अनन्त पुण्य को पाता है। हे देव ! जो तुम्हारी पूजा करके मामेश्वर की भी पूजा करता है वह पुण्य फल पा लेता है और उसे कभी भी फिर शिशु नहीं बनना पडता है। इस प्रकार वह भगवान हर, गणेश जी को स्वयं वर देकर पवित्र दण्डकवन में लीन हुआ और इस स्थान का नाम मामेश्वर पड गया। मनुष्य पवित्र मामलक ग्राम में मामेश्वर लिङ्ग का दर्शन करके गणपति की अर्चना करने से अश्वमेध का फल पा लेता है। मामेश्वर के कुण्ड में स्नान करके मामालक प्रभु का दर्शन करने से मनुष्य पापों से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता है जिस प्रकार कमल का पता जल से लिप्त नहीं होता है। हे शिवे ! मामेश्वर के समीप गणपति का दर्शन करके शास्त्रोक्त विधि से विघ्नेश की अर्चना करने से समग्र सिद्धियां प्राप्त होती हैं। हे जगन्माता महेश्वरि ! पवित्र मामालक ग्राम में विद्यमान विघ्नराज गणेश की अर्चना करने वाले मनुष्य को बडे २ विघ्न, बुरे ग्रह, और ईतियां[2] न इस लोक में और न परलोक में कुछ बिगाड सकती हैं। मामेश्वर के समीप स्वयम्भू गणपति को पूजा करने वाला मनुष्य ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है। नियम पूर्वक

1. ५ पंक्तियां क, ख, घ, पु० अधिक पाठ। 2. अतिवृष्टि अनावृष्टि इत्यादि ६ प्रकार की ईतियां होती हैं।

जितेन्द्रिय होकर मामालक के अधिष्ठातृ देवता विघ्नराज का दर्शन करने वाले मनुष्य को सोमयाग का समग्र फल प्राप्त होता है।

अकामो[1] वा सकामो वा नरो नियतमानसः ।
मामेशं विघ्नराजेशं दृष्ट्वा मुच्येत बन्धनात् ॥१०६॥
दृष्ट्वा विघ्नेश्वरं देवि ! महापातकनाशनं।
इत्येष पटलो गुह्यो मया तेऽद्य प्रकाशितः ॥१०७॥
श्रुतश्च पठितश्चापि विघ्नसङ्घात्प्रमुच्यते ।

इति तृतीयः परिच्छेदः ॥

भैरवी :— श्रुत्वा गणपतेः देव महिमानमनुत्तमं ॥१०८॥
मामेश्वरस्यापि तथा प्रीतास्मि जगदीश्वर !।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नदीं लम्बोदरीं तथा ॥१०९॥
अनुग्राह्या प्रिया तेऽस्मि तदा मे कृपया वद।
भैरवः :— एकदा संस्थितस्यापि कैलासे परमेशितुः ॥११०॥
द्वारस्थोऽभूद्देवदेवेशि ! स्वयं गणपतिस्तदा ।
गणेशं कथयामास स्वयं स भगवान्हरः ॥१११॥
आगच्छेन्मा कश्चिदत्र देवानपि निषेधय।
श्रुत्वा वाक्यं महेशस्य महागणपतिस्तदा ॥११२॥
निषेधन्नन्दिना सार्धं शासनं पालयन्प्रभोः ।
देव्याः सह महादेवः क्रीडालापपरोऽभवत् ॥
तयोरेवं निवसतोः कैलासे शुभमन्दिरे ॥११३॥

एकाग्र मन वाला मनुष्य सकाम भाव से अथवा निष्काम भाव से मामेश विघ्नराज का दर्शन करने से बन्धन से छूट जाता है क्योंकि विघ्नराज का दर्शन बडे २ पापों का नाश करने वाला होता है। हे देवि ! यह रहस्यपूर्ण पटल मैंने आज तुम्हारे सामने प्रकट किया, इसके सुनने से अथवा पढ़ने से मनुष्य विघ्नों के से समूह से छूट जाता है।

तृतीय परिच्छेद समाप्त।

---

1. २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ।

भैरवी :– हे जगत के ईश्वर महागणपति तथा मामेश्वर के अनुपम माहात्म्य को सुन कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गई हूँ। अतः अब मैं लम्बोदरी नदी के विषय में सुनना चाहती हूँ। यदि मैं आपके अनुग्रह का पात्र अथवा आपकी प्रियतमा हूँ तो मुझे कृपा करके कहिये।

भैरव :—हे देवेशि! एक दिन परमेश्वर शिव कैलास पर बैठे थे और स्वयं गणपति जी द्वारपाल पद पर नियुक्त थे। उसी समय भगवान शंकर ने गणेश जी से कहा कि यहां कोई न आजाये तुम्हें देवताओं को भी रोकना चाहिये। महेश्वर की आज्ञा सुन कर गणपति जी नन्दी के साथ साथ स्वामी की आज्ञा पालन करता हुआ हरेक को वहां आने से रोकने लगा। महादेव भगवती के साथ वर्तालाप करने में लग गये। इस प्रकार से जब वह दोनों कैलास पर एक अच्छे घर में रहने लगे :—

एतस्मिन्नन्तरे देवि! शक्रो देवगणैः सह।
त्रिपुरार्दितो ह्याजगाम द्रष्टुकामो महेश्वरम् ॥११४॥
स्वयं गणपतिस्तत्र न्यषेधत्सुरपं तदा।
शक्रः क्रोधसमाविष्टो वज्राघातं समादधे ॥११५॥
हूङ्कारेण गणेशोऽपि बाहुमस्तम्भयद्धरेः।
स्वबाहुं स्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रः गणपतिं तदा ॥११६॥
तुष्टाव वाग्भिरर्थ्याभिर्दण्डवत्प्रणिपत्य सः।
इन्द्रः :— "अप्रमेय गुणं नित्यं गणेशं सुरपूजितं ॥११७॥
वेदान्त[1] वेद्यं सर्वज्ञं पूजितञ्च सुरेश्वरैः।
ओंकारं[2] परमं ब्रह्म ह्यक्षरं शिवसन्निभं ॥११८॥
पार्वती प्रिय पुत्रञ्च पूजयामि गणेश्वरम्।
देवा[3]नामादिकर्तारमादिमध्यान्तवर्जितं ॥११९॥
चिदचित्पदगम्भीरं प्रणमामि विनायकम्।
वेदान्तैरुरवच्छिन्नमागमैरपि दुर्गमं ॥१२०॥

---

1. १ पंक्ति क, ख, घ पु० अधिक पाठ। 2. २ पंक्तियां क, घ पु० अधिक पाठ। 3. ६ पंक्तियां ख, ग, पु० अधिक पाठ।

सूक्ष्मं शान्तं बृहत्स्थूलं प्रणमामि गणेश्वरम् ।
शान्तं चिदद्वयं देवं विमर्शोद्भवरूपिणं ॥१२१॥
तत्त्वसारं महातत्वं प्रणमामि गणेश्वरं ।
ब्रह्माद्वयानवच्छेद्यं शिवाद्वयविबोधितं ॥१२२॥
स्वप्रकाशं परात्मानं प्रपद्ये तं विनायकम् ।
वैरिविघ्नप्रदं नित्यं भक्तानां सिद्धिदायकं ॥
शिवसूनुं परानन्दं तं नमामि विनायकम् ॥१२३॥

हे देवि! इतने में ही त्रिपुरासुर से सताया हुआ इन्द्र देवताओं के साथ भगवान शंकर के दर्शन के लिये वहां आया। वहां गणेश ने उसे अन्दर जाने से रोका जिस पर कि इन्द्र ने क्रुद्ध होकर हाथ में वज्र उठाया। गणेश ने भी हुङ्कारमात्र से ही इन्द्र की भुजा का स्तम्भन किया। अनन्तर इन्द्र ने अपनी भुजा का स्तम्भन देख कर गणेश जी का दण्डवत प्रणाम किया और सुन्दर वाणी से उसकी स्तुति भी की।

इन्द्र :—अनन्त गुणों से पूर्ण, नित्य तथा देवों से भी पूजित गणेश, वेदान्त से ज्ञेय, सर्वज्ञ, देवों से अर्चित, ओंकाररूप, परब्रह्म, परम अक्षर, पर शिव के समान, पार्वती के प्रिय पुत्र गणेश जी की मैं अर्चना करता हूँ। देवों के आदिस्रष्टा, आदि-मध्य तथा अन्त से हीन, चित् तथा अचित् स्वरूप होने से अत्यन्त गम्भीर, गणेश को प्रणाम करता हूँ। वेदान्तों से अवर्णनीय, आगमों से भी अज्ञेय, सूक्ष्म, शान्त, बडे तथा मोटे गणेश को प्रणाम करता हूँ। शान्त, चिन्मय, द्वैतहीन, तथा विमर्शरूप, ३६ तत्वों के मूलभूत परतत्वरूप गणेश जी को प्रणाम करता हूँ। अद्वैत ब्रह्म रूप होने से अनवच्छेद्य तथा परशिव के साथ अभेद भावना से ज्ञेय, स्व-प्रकाश तथा परस्वरूप गणेश को प्रणाम करता हूँ। नित्य वैरियों को विघ्न डालने वाले, भक्तों को सिद्धि देने वाले उस परम आनन्द स्वरूप शिव के पुत्र गणेश को नमस्कार करता हूँ।

मोदकाहार परमं साक्षमालाकरं परं ।
त्रिनेत्रं गणवक्त्रञ्च तं प्रपद्ये महेश्वरं ॥१२४॥

खदन्तं परशुं चैव धारयन्तं भुजद्वये ।
रक्तवस्त्राम्बरधरं रक्तमालाधरं तथा ॥१२५॥
विघ्नराशीन्विकिरन्तं कराक्षेपैर्मुहुर्मुहुः ।
अनन्तं परमं तत्वं सारात्सारतरं परम् ॥१२६॥
वेदागमानवच्छेद्यं प्रपद्ये गणनायकम् ।
अप्रमेयगुणायापि त्र्यक्षाय. वरवर्णिने ॥१२७॥
विनायकाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः ।
भरव :— इत्थं गणपतिः श्रुत्वा वाचं सुरपतेस्तदा ॥१२८॥
क्रोध परं सञ्जहार दृशापश्यद् सुरेश्वरम् ।
मोचयामास तं बाहुं गणेशः परया मुदा ॥१२९॥
देवोऽपि स जगामाशु धाम कामसमन्वितः ।
प्रणिपत्य महेशस्य सूनुमत्र विनायकं ॥१३०॥
क्रोधसंहारकं नाम स्तोत्रं गणपतेस्ततः ।
त्रिकालं श्रद्धया युक्तः पठन्मुच्येत सङ्कटात् ॥१३१॥
ततो गणपतिर्देवि ! तृषितः क्षुधितोऽपि च ।
भुक्त्वा स्वाधुफलं तत्र पपौ गङ्गा स पुष्कलां ॥१३२॥
पीत्वा गङ्गां स विघ्नेशस्तदा लम्बोदरोऽभवत् ।
लम्बोदरेति वै नाम्ना ह्याजुहाव हरस्तदा ॥१३३॥

लडडुओं का भोजन करने वाले, अक्षमाला को धारण किये हुए त्रिनेत्र गणेश जी की शरण में आता हूँ। अपने दांत और कुल्हाडे को अपनी दो भुजाओं पर धारण करने वाले, लाल वस्त्रों के साथ लाल मालायें धारण किये हुए, बार बार हाथों के प्रहारों से विघ्नों के झुण्डों को इधर उधर फैंकने वाले, अनन्त, पर तत्व, सार में भी सारभूत, वेद तथा आगमों से अवर्णनीय गणेश जी की शरण में आया हूँ। अनन्त गुणों से पूर्ण तीन नेत्रों वाले, सुन्दर देवता गणेश जी को बार बार प्रणाम हो।

भैरव :—इस प्रकार इन्द्र की वाणी सुन कर गणेश जी का क्रोध हवा हो गया और वह इन्द्र की ओर दया दृष्टि से देखने लगा। गणेश जी ने अत्यन्त हर्ष से शक्र की भुजा को मुक्त किया। वह इन्द्र भी महेश

के पुत्र गणेश को प्रणाम करके कामनाओं से पूर्ण होकर अपने घर को चल दिया। अतः जो मनुष्य इस क्रोध संहारक नाम वाले गणपतिस्तोत्र को त्रिकाल (प्रातः-मध्याह्न-सायं) में बडी श्रद्धा से पढता है वह सङ्कट से छूट जाता है। हे देवी! अनन्तर प्यासे तथा भूखे गणेश जी ने वहां पर मीठे फल खाकर समग्र गङ्गा को पी लिया। गङ्गा का जल पीने से विघ्नेश का पेट बढ गया और भगवान शंकर ने 'लम्बोदर' इसी नाम से उसे पुकारा।

शुष्कां दृष्ट्वा तु गङ्गां स हरो गणपतेः प्रिये !।
डमरुणाहनत्तस्य ह्युदारमुदरं तदा ॥१३४॥
अवमन्मुखतो गङ्गां तदा गणपतिः प्रिये !।
सैव लम्बोदरी जाता लम्बोदरविनिस्सृता ॥१३५॥
यस्मांल्लम्बोदरात्तस्य[1] गणेशस्य विनिस्सृता।
तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिः महालम्बोदरी नदी ॥१३६॥
लम्बो[2]दर्यां नरः स्नात्वा मुच्येज्जन्मोद्भवैरघैः।
सखरस्य[3] समीपे तु स्नाति लम्बोदरी जले ॥१३७॥
स याति विघ्नरहितशिवलोकं सनातनं।
लम्बोदरीजलस्पर्शः कोटिजन्माघनाशनः ॥१३८॥
करणीयो महादेव ! मामलेशस्य सन्निधौ।
लम्बोदरभवां यो वै नदीं परमपावनां ॥१३९॥
स्नाति यो विधिवन्मर्त्यः सर्वं पापैः प्रमुच्यते।
गां हिरण्यं सुवासश्च लम्बोदरनदीतटे ॥१४०॥
यो ददाति द्विजश्रेष्ठः सोऽनन्तं फलमाप्नुयात्।
लम्बोदरीनदीतीरे यः स्नायात्परया मुदा ॥१४१॥
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते।
भूयो[4] भूयः किमुक्तेन नरैः सुपतितैः प्रिये ! ॥१४२॥

---

1. १ पंक्ति ख, ग पु० अधिक पाठ। 2. ६ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ। 3. यहां पर 'सखर' शब्द से अभिप्रेत कोई तीर्थ स्थान है जो आज कल प्रसिद्ध नहीं है। 4. २ पंक्तियां क, पु० अधिक पाठ।

लम्बोदरीनदीतीरे स्नातव्यमविशङ्कया ।
इति ते कथिता देवि ! लम्बोदरी नदी शुभा ॥१४३॥
श्रुत्वा स्वभक्तितः पुंसां महापातकनाशिनी ।
इत्येष पटलो गुह्यः कलिकल्मषनाशनः ॥
श्रुतो वा पठितो ध्यातो महापातकहा कलौ ॥१४४॥

चतुर्थः परिच्छेदः ।

हे प्यारी ! भगवान शंकर ने गङ्गा को सूखी हुई देखकर उस गणेश के पेट को डमरू से ताडित किया जिससे कि उसने मुख से गङ्गा का फिर भी वमन किया। उस लम्बोदर से निकली हुई वही गङ्गा लम्बोदरी बन गई। क्योंकि यह गङ्गा उस गणेश के बडे पेट से निकली है अतः प्राचीन विद्वानों ने इस का नाम ही लम्बोदरी किया है। लम्बोदरी नदी में स्नान करने से मनुष्य जन्म जन्म के पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य सखर के समीप लम्बोदरी के जल में स्नान करता है वह विघ्न रहित होकर सनातन शिवलोक में जाता है। हे महादेवी ! लम्बोदरी के जल का स्पर्श मामलेश के सामने ही करना चाहिये क्योंकि उससे करोडों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य लम्बोदर से निकली हुई परम पवित्र नदी में विधिपूर्वक स्नान करता है उस के सब पाप छूट जाते हैं। लम्बोदरी के तट पर जो गाय, सोना और अच्छे कपडे दान देता है वह अनन्त फल पा लेता है। जो मनुष्य लम्बोदरी नदी के तट पर अत्यन्त हर्षित होकर स्नान करता है वह शिव के साथ एक होकर शोक से मुक्त हो ज़ाता है। हे प्रिये ! बार बार कहने से क्या पतित मनुष्यों को लम्बोदरी नदी के तट पर निशंक मन से स्नान करना चाहिये। हे देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पवित्र लम्बोदरी का वर्णन सुनाया जो कि भक्ति से सुनने वाले मनुष्यों के बडे पापों को नष्ट करने वाला है। कलियुग के मल को नाश करने वाला यह रहस्यमय पटल श्रवण, पठन, अथवा मनन से ही भयंकर पापों को नष्ट कर देता है।

भैरवः :— शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि भृगुतीर्थमनुत्तमं ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयैः ॥१४५॥

भृगुर्मुनिवरो देवि ! परिशूल[1]वने पुरा।
तपश्चचार सुमहद्देवैरपि सुदुष्करम् ॥१४६॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु परिशूलवने तदा।
जगाम परमर्षेश्च नियतस्य परात्मनि ॥१४७॥
आजगाम तदा तं तु विष्णुर्दर्शयितुं मुखं।
सर्वैर्देवगणैः सार्धं भृगुः प्रोवाच तं हरिम् ॥१४८॥

भृगु :— विष्णोर्विष्णोर्महाविष्णोः प्रभविष्णोर्जगत्पते !।
अप्रमेयानन्तगुण ! भूयो भूयश्च ते नमः ॥१४६॥
इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरं।
दण्डवत्प्रणिपत्याशु भूयो भूयो नमोऽकरोत् ॥१५०॥
उत्थाप्य प्रणतं तत्र भृगुं विष्णुस्सनातनः।
आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नश्चुम्बन्मूर्धनि तं मुनिम् ॥१५१॥
आलिलिङ्गतुरन्योन्यं भृगुविष्णू महेश्वरि !।
तदङ्गस्वेदभवैर्जलैः परमपावनैः ॥१५२॥
पुण्यतीर्थमभूद्देवि ! परिशूलवने परं।
भृगोरालिङ्गनाद्यस्माद्धरिस्वेदसमुद्भवं ॥१५३॥
पुण्यं तत्प्रथितं तस्माद् भृगुतीर्थं महेश्वरि !।
भृगुतीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमं॥
दत्वा पीत्वा प्रमुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥१५४॥

भैरव :—हे देवी ! सुनो अब मैं अनुत्तम भृगुतीर्थ के विषय में कहता हूँ जिस को सुन कर मनुष्य बडे पापों के सङ्घों से छूट जाता है। हे देवी ! प्राचीन काल में मुनिवर भृगु ने परिशूल वन में अत्यन्त कठिन तथा देवों से भी दुष्कर तपस्या की। परब्रह्म के ध्यान में लगे हुए उस ऋषि को तप करते करते दिव्यमान से एक हजार वर्ष बीत गया। अनन्तर भगवान विष्णु सारे देवताओं के साथ उसे दर्शन देने के लिये आये और भृगु ने उनसे इस प्रकार के वाक्य कहे :—

भृगु :— हे देवों से भी मान्य, सर्वशक्तिमान, जगत्पति, अप्रमेय

1. आजकल पहलगाम कहा जाता है।

तथा अनन्त गुणों से पूर्ण विष्णु ! आपको बार बार प्रणाम हो। इस प्रकार सर्वशक्तिमान महेश्वर विष्णु की स्तुति करके शीघ्रता से दण्डवत होकर वह बार बार प्रणाम करने लगा। फिर सनातन भगवान विष्णु ने आनन्द के आंसू भर कर उस प्रणत मुनि के सिर को बार २ चुम्बन करते हुए ऊपर उठाया। हे महेश्वरी ! भृगु तथा विष्णु ने आपस में प्रगाढ आलिङ्गन किया। हे देवी ! फिर उनके अङ्गों से उत्पन्न पसीने के जल से परिशूल वन में एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ बन गया। हे महेश्वरि ! जिस कारण भृगु के साथ आलिङ्गन करने से नारायण के पसीनों से वह तीर्थ बन गया अतः वह पवित्र तीर्थ भृगुतीर्थ के नाम से ही प्रख्यात हुआ। भृगुतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य उत्तम पुण्य को प्राप्त कर लेता है तथा वहां पर दान देने से अथवा तीर्थ का जल पीने से करोडों ब्रह्महत्याओं से मुक्त होता है।

श्राद्धं कृत्वा तीर्थवरे भृगोः परमपावने।
पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥१५५॥
भूयो भूयः किमुक्तेन नरः पातकवान्कलौ।
भृगुतीर्थं समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥१५६॥

भैरवी :— भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर !
परिशूलवने पुण्ये महापातक नाशनम् ॥१५७॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नीलगङ्गासमुद्भवं।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः कोटिजन्ममघैरघैः ॥१५८॥

भैरव :— शृणु देवि ! प्रवक्ष्येऽहं नीलगङ्गासमुद्भवं।
यच्छ्रुत्वा लभ्यते मर्त्यैरग्निष्टोमफलं प्रिये ! ॥१५९॥
एकदा क्रीडतस्तस्य शिवस्य वरवर्णिनि ! ।
अक्षिणी चुम्बतस्तस्याः पार्वत्याः सुरसुन्दरि ! ॥१६०
कालाञ्जनाक्तं वदनं समभूत्तस्य सुन्दरि ! ।
कालाञ्जनाङ्कितं दृष्ट्वा मुखं देवस्य पार्वती ॥१६१॥
दर्शयामास वै तस्मै ह्यादर्शं विमलं तदा।
दृष्ट्वाञ्जनाक्तं वदनं स्वं देवो भगवान्हरः ॥१६२॥

प्रक्षालयामास तदा वदनं गङ्गया शिवे ! ।
सैव गङ्गा समापन्ना कालाञ्जननिभाऽभवत् ॥
नीलगङ्गेति विख्याता महापातकनाशिनी ॥१६३॥

परमपवित्र भृगु के तीर्थ पर श्राद्ध करने से निसंदेह सौ कल्पपर्यन्त पितर तृप्ति प्राप्त करते हैं। बार २ कहने से क्या है कलियुग में पापी मनुष्य भी भृगुतीर्थ पर पहुँच कर सब पापों से मुक्त होता है।

भैरवी :— हे सुन्दर ! परिशूलवन में विद्यमान पापों का नाश करने वाले भृगुतीर्थ का माहात्म्य सुनकर मैं प्रसन्न हुई। अब मैं नीलगङ्गा की उत्पत्ति को सुनना चाहती हूँ जिसके सुनने से मनुष्य करोडों जन्मों से उत्पन्न पापों से मुक्त होता है।

भैरवी :—हे देवी ! सुनो मैं नीलगङ्गा के पुण्य को बतलाता हूँ जिसको सुनने से मनुष्यों को अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है। हे सुन्दरी ! एक दिन क्रीडानिरत भगवान शिव ने पार्वती की आंखों का चुम्बन किया जिससे कि उस का मुख काले अञ्जन से भर गया। पार्वती ने काले अञ्जन से भरे हुए शिव के मुख को देखकर उसे निर्मल आईना दिखाया। हे शिवे ! फिर भगवान शंकर ने अपने मुख को काले अञ्जन से भरा हुआ देखकर गंगा के पानी से धो डाला। वही गंगा कृष्णवर्ण अञ्जन जैसी बन कर नीलगंगा के नाम से प्रसिद्ध हुई तथा यह नदी महा पापों का नाश करने वाली है।

नीलगङ्गाम्बसि स्नात्वा सर्वपापैःविमुच्यते ।
नीलगङ्गामृदं चापि यो दध्यादङ्गके स्वके ॥१६४॥
स याति ब्रह्म सदनं यत्र गत्वा न शोचते ।
इति ते कथतं देवि ! माहात्म्यममरोत्तमे ! ॥१६५॥
इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ ।
श्रुतश्च पठितश्चापि त्रिमलघ्नो प्रकीर्तितः ॥१६६॥

इति पञ्चमः परिच्छेदः ।

भैरव :— शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्थाण्वा[1]श्रमवनं महत् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥१६७॥
पुरा चचार सुमहत्तपो हैमवते वने ।
गिरिशो दक्षतनुजाविश्लेषिततनुर्हरः ॥१६८॥
दिव्यंवर्ष सहस्रान्तं समाधिनिरतोऽभवत् ।
तत्रैव पार्वती देवी हरसेवार्थमागता ॥१६९॥
सेवापरा ह्यभूत्तत्र चिरं देवी महेश्वरी ।
स्थाणुवत्संस्थितो यत्र महेशस्तपसि स्थितः ॥१७०॥
स्थाण्वाश्रमस्ततः प्रोक्तो महापातकनाशनः ।
स्थाण्वाश्रमसमीपे तु यः स्नायात्सुरवन्दिते ! ॥१७१॥
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते ।
स्थाण्वाश्रमे तु यो देवि ! श्राद्धं कुर्याद्विधानतः ॥
पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥१७२॥

नीलगङ्गा के पानी में स्नान करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य अपने अङ्गों पर नीलगङ्गा की मिट्टी मलता है वह सब शोकों से छूट कर परब्रह्म में लीन हो जाता है। हे देवों से भी मान्य देवी ! इस प्रकार की महिमा मैंने तुम्हें सुनाई। कलियुग में भयङ्कर पापों का नाश करने वाला यह रहस्यमय पटल सुनने से या पढने से भी त्रिविध दुख (आध्यात्मिक–आधिदैविक-अधिभौतिक) का नाशक कहा गया है।

पञ्चम परिच्छेद समाप्त ।

भैरव :—हे देवी ! सुन अब मैं महान स्थाण्वाश्रमवन का वर्णन करता हूँ जिस को सुन कर मनुष्य करोडों महापापों से मुक्त होता है। पूर्वकाल में दक्ष की कन्या से वियुक्त होकर भगवान शंकर ने हिमालय पर कठिन तपस्या की। वह दिव्य मान से एक हजार वर्ष तक समाधि में लीन हुआ। फिर पार्वती देवी भी वहीं शंकर की सेवा के लिये आगई और वह महेश्वरी आकर चिर काल तक उसकी सेवा में निरत हुई। जिस कारण वहां

1. आजकल चन्दनवाडी कहा जाता है।

पर शंकर एक स्थाणु (ठूंठ) की तरह तपस्या में स्थिर था अतः उस महा पापों का नाश करने वाले स्थान को ही स्थाण्वाश्रम के नाम से पुकारा गया। हे देवताओं से वन्दनीया ! जो मनुष्य स्थाण्वाश्रम के समीप स्नान करता है वह शिव के साथ एक होता है और उसे कोई शोक नहीं रहता है। हे देवी ! जो मनुष्य स्थाण्वाश्रम में शास्त्रोक्त रीति से श्राद्ध करता है निसंदेह उसके पितर सौ कल्प तक तृप्त हो जाते हैं।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
स्थाण्वाश्रमवने पुण्ये मुच्यते नात्र संशयः ॥१७३॥
गवां कोटिसहस्रस्य सम्यक् दत्तस्य यत्फलं ।
तत्फलं कोटिगुणितं स्थाण्वाश्रमसमीपतः ॥१७४॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गंगासागरसंगमे ।
स्नात्वा यत्फलमाप्नोति तत्स्थानोर्दर्शनात्प्रिये ॥१७५॥
गा हिरण्यं चौमञ्च तिलप्रस्थं महेश्वरि !।
दत्वा स्थाणुवने देवि ! परमं पुण्यमाप्नुयात् ॥१७६॥
स्थाण्वाश्रम[1]समीपे तु स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि !।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१७७॥
देवार्चनमत्र कुर्वन्तर्पणं च तथा प्रिये ।
जपञ्च मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥१७८॥
न करोति महास्नानं दानं वा जगदम्बिके ।
स याति नरकान्घोराज्जन्मे जन्मे च पातकी ॥१७९॥
राक्षसाश्च पुरा देवदर्शनार्थमुपागताः ।
देवैः सार्धञ्च मिलित्वा स्थाण्वाश्रमसमीपतः ॥१८०॥
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं स्पर्धया गिरा ।
कलहञ्चक्रिरेऽन्योन्यं भुजाभुजि महेश्वरि ! ॥१८१॥
गिर्यारोहणकाले तु दैत्याः पिष्टाः सुरोत्तमैः ।
पिष्टा दैत्यास्तत्र गिरौ लीनास्तत्रैव सुन्दरि !।।
दैत्यान्पिष्टान्देवगणा वीक्ष्य हर्षमुपाययुः ॥१८२॥

---

1. ४ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ ।

निसंदेह भयङ्कर पापों से अथवा साधारण पापों से युक्त मनुष्य भी पवित्र स्थाएवाश्रम वन में मुक्त होता है। हजार करोड गायों के अच्छी तरह दान देने से जो फल मिलता है वही फल उससे भी करोड-गुणा स्थाएवाश्रम के समीप मिलता है। हे प्रिये! कुरुक्षेत्र, प्रयाग, तथा गंगा समुद्र के संगम पर स्नान करने से जो फल मिलता है वही फल स्थाएवाश्रम के दर्शन से मिलता है। हे देवि! गायें, सोना, रेशमी वस्त्र तथा सेर भर तिल स्थाणुवन में दान देने से अत्यन्त पुण्य मिलता है। हे सुन्दरी! स्थाएवाश्रम के समीप स्नान करके अथवा जलपान करके मनुष्य उसी तरह पापों से लिप्त नहीं होता है जिस तरह कमल का पता जल से। हे प्रिये! यहां पर देवपूजा, तर्पण और जप करना चाहिये ऐसा करने से मनुष्य करोडों महा पापों से छूट जाता है। हे जगत की माता! जो मनुष्य यहां पर स्नान अथवा दान नहीं करता है वह जन्म जन्म का पापी बनकर घोर नरकों को जाता है।

प्राचीन काल में राक्षस लोग देवों के साथ मिलकर स्थाएवाश्रम के समीप भगवान के दर्शन के लिये आये। हे महेश्वरि! उन लोगों ने 'मैं ही पहले मैं ही पहले' इस प्रकार स्पर्धा से कहते हुए आपस में लडाई और हाथापाई भी की। हे सुन्दरी! पहाड पर चढने के समय देवता लोगों ने राक्षसों को पीस डाला और वह पिस कर उस पर्वत में ही लीन हो गये। देवता लोग राक्षसों को पिसा हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

यस्मिन्गिरौ दैवगणैर्दैत्या पिष्टाः समन्ततः।
स गिरिः परमोद्धारः पेषाख्यः प्रथितो भुवि ॥१८३॥
पिनष्टि यत्र पापानि नरो नियतमानसः।
ततः प्रोक्तः पुराविद्भिः पेषाख्यो गिरिसत्तमः ॥१८४॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
स्नात्वा यत्फलमाप्नोति तस्यपेषस्य तु दर्शनात् ॥१८५॥
गिरावारोहणे देवि यावन्ता रेणुबिन्दवः।
तावन्ति वाजपेयानि प्राप्नोत्येव न संशयः ॥१८६॥

नैमिषे[1] च महाक्षेत्रे यत्फलं तत्समाप्यते ।
वाराणस्याश्चतुर्गुणं सहस्रं कुरुजांगलात् ॥१८७॥
लक्षं मानसक्षेत्रात्तु पेषाख्ये गिरिसत्तमे ।
आरोढु[2]मिच्छते यस्तु गिरिं देवि ! समाहितः ॥१८८॥
'श्रीश्रीश्रीशितिकण्ठेश !' इमं मन्त्रमनुस्मरेत् ।
स याति भवनं पुण्यं यत्र गत्वा न शोचते ॥१८९॥
विधिना यो नरो देवि ! पेषमारोहते नरः ।
पापसङ्घान् पिष्ट्वात्र पदं सादाशिवं व्रजेत् ॥१९०॥
पेषदर्शनमात्रेण नरो याति परं पदं ।
डाकिन्याद्याश्च[3] सर्वास्ता नाशमायान्ति तत्क्षणं ॥१९१॥

जिस पर्वत पर देवों ने चारों ओर से राक्षसों को पिस डाला वह पवित्र पर्वत पृथिवी पर पेष नाम से प्रख्यात हुआ । जहां पर संयमशील मनुष्य पापों को पीसता है, प्राचीन विद्वानों ने उस उत्तम पर्वत को पेष नाम दिया। कुरुक्षेत्र, प्रयाग, तथा गंगा सागर संगम पर स्नान करने से जो फल मिलता है वह पेष के दर्शन से मिलता है। हे देवि। पर्वत पर चढते समय जितने भी धूल के कण आते है उतने ही वाजपेय यज्ञों का फल मानव को मिलता है और साथ ही जो फल महातीर्थ नैमिषारण्य की यात्रा से मिलता है वह भी यहां पर प्राप्त होता है। उत्तम पर्वत पेष पर काशी से चौगुणा, कुरुजांगल से हज़ार गुणा, और मानस तीर्थ से लाख गुणा फल मिलता है। हे देवी। जो मनुष्य पेष गिरि पर चढना चाहता है उस को 'श्रीश्रीश्रीशितिकण्ठेश' इस मन्त्र का स्मरण एकाग्र मन से करना चाहिये, ऐसा करने से वह उस स्थान को जाता है जहां कोई शोक नहीं । हे देवी ! जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधि से पेष पर्वत पर चढता है वह इस संसार में पापों के समूहों को पीस कर सदाशिव पदवी प्राप्त कर लेता है। मनुष्य पेष के दर्शन मात्र से ही परम पद को प्राप्त कर लेता

1. १ पंक्ति क, ख, घ पु० अधिक पाठ।
2. २ पंक्तियां क, ग पु० अधिक पाठ।
3. १ पंक्ति ग पु० अधिक पाठ।

है और साथ हीं डाकिनी शाकिनी इत्यादि विरोधिनी शक्तियां भी तत्त्वण ही नष्ट हो जाती हैं।

नमस्करोति यो देवि ! पुण्यं पेषगिरिं नरः ।
स[1] याति परमं ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचते ॥१६२॥
बहुनात्र किमुक्तेन कलौ पेषगिरिं नरः ।
आरुह्य मुक्तिमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥१६३॥
इति प्रोक्ता मया देवि ! पेषस्य महिमा परा ।
श्रुतानुध्याता पठिता महापातकनाशिनी ॥१६४॥
इत्येष पटलो गुह्यो प्रोक्तस्तव वरानने ! ।
श्रुतश्च[2] पठितश्चापि हयमेधादियागदः ॥१६५॥

इति षष्ठः परिच्छेदः ।

भैरवी :— श्रुत्वा भवन्मुखादेव महिमानमनुत्तमं ।
नगस्य पेषिताख्यस्य दैत्यास्थिप्रभवस्य च ॥१६६॥
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि नागस्यापि महेश्वर ! ॥१६७॥
प्रभावञ्च समुत्पत्तिं कथयस्व प्रसादतः ।
भैरवः :— शृणु सुश्रोणि ! वक्ष्यामि शेषस्य नागरूपिणः ॥१६८॥
माहात्म्यञ्च प्रभूतिञ्च सर्वपापप्रणाशिनीं ।
पुरा कृतयुगे देवि ! स्थानं चक्रे हिमालये ॥१६९॥
शिखरे वै महापुण्ये चामरेश्वरसन्निधौ ।
पूजार्थं संयमार्थञ्च तपोऽर्थं सुरसुन्दरि ! ॥
देवतासिद्धगन्धर्वयक्षजातिसमन्वितः ॥२००॥

हे देवी ! जो पवित्र पेषगिरि को प्रणाम करता है वह शोक रहित होकर परब्रह्म में लय होता है। इस विषय में बहुत कहने से क्या, यह बात तो निसंदेह सत्य है कि कलियुग में मनुष्य पेषगिरि पर चढने से

1. २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ। 2. १ पंक्ति क, ख, घ पु० अधिक पाठ।

मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे देवि ! इस प्रकार मैंने पेष की पवित्र महिमा का वर्णन किया। यह तो श्रवण, मनन अथवा पठन से ही महापापों का नाश करने वाली है। हे सुन्दर मुखी ! मैंने तुझे यह रहस्यमय पटल सुनाया यह तो श्रवण अथवा पठन से अश्वमेधादि यज्ञों का फल देता है।

छटा परिच्छेद समाप्त।

भैरवी :—हे देव आपके मुख से, राक्षसों की हड्डियों से बने हुए पेषगिरि का माहात्म्य सुन कर मैं निसंदेह कृतार्थ हो गई हूँ। हे महेश्वर ! अब में शेषनाग की उत्पति और प्रभाव सुनना चाहती हूँ कृपा करके मुझे कहिये।

भैरव :—हे पतली कमर वाली ! सुन मैं सर्परूप धारी शेष की महिमा और उत्पति का वर्णन करता हूँ जो कि सब पापों का नाश करने वाली है। हे देवि ! पूर्वकाल सत्ययुग के जमाने में (भगवान ने) अमरेश्वर के समीप ही हिमालय के उच्च शिखर पर पूजा, संयम तथा तपस्या के लिये अपना स्थान बनाया। हे सुन्दरी ! देवता, सिद्ध तथा यक्ष जाति के लोग भी वहीं पर आकर रहने लगे।

एतस्मिन्नन्तरे कश्चिद्वातरूपधरो बली।
दैत्येन्द्रोऽभून्महावीर्यस्तपोगर्वेण गर्वितः ॥२०१॥
अत्रस्थान्संग्रहान्देवानीरयामास शक्तितः।
देवाः सह महेन्द्रेण शरणं परमेश्वरं ॥२०२॥
निकटस्थं समाजग्मुः स्तुतिभिः पर्यतोषयन्।
देवा ऊचुः— नमस्ते देवदेवाय शम्भवे परमात्मने ॥२०३॥
जगत्स्थितिविनाशानां हेतुभूताय वै नमः।
त्वं माता सर्वभूतानां त्वमेव जगतां पिता ॥२०४॥
त्वं सुहृद्बन्धुरेवासि त्वत्तो नान्यज्जगत्त्रये।
अनाथानां तु नाथस्त्वमगतीनां गतिर्भव ॥२०५॥
आर्तानामार्तिहा त्वं वै त्वमेव शरणंविभो !।
इति स्तुत्या महादेवः प्रादुरासीद्दयानिधिः ॥२०६॥

उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवानां सौख्यभाजनं ।
सर्वं श्रुतं मया देवा दैत्येन्द्रस्य दुरात्मनः ॥२०७॥
मया संवर्धितो दैत्यच्छेतं नार्हा सुराधिपाः ।
तस्माद्व्रजध्वं शरणं शरणार्तिप्रणाशनम् ॥२०८॥
भगवन्तं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरं ।
क्षीरसागरमध्यस्थं शेषशायिनमेवच ॥२०९॥
इतिविसृज्य तान्देवानन्तर्धिं प्राप्तवान्हरः ।
तत्तो देवगणाः सर्वे हर्षसम्पूर्णमानसाः ॥
क्षीराब्धिं प्राप्य संतुष्टास्तुष्टुवु जगतां पतिं ॥२१०॥

इसी समय में कोई अत्यन्त बलशाली, तपस्या के बल पर घमण्डी, वायु के रूप वाला राक्षस भी विद्यमान था। वह यहां पर ठहरे हुए देवताओं को समग्र ग्रहमण्डल के साथ ही कंपित करने लगा। देवता लोग अपने राजा इन्द्र के साथ समीपवर्ती भगवान की शरण में आये और उसे स्तुतियों से प्रसन्न किया।

देवता बोले :—देवों के देव, परमात्मरूप, जगत की स्थिति तथा नाश के मूलकारण शिव तुझे प्रणाम हो। तुम सब जीवों के माता, तुम जगत के पिता तथा तुम्ही मित्र और बान्धव भी हो। तीनों लोकों में भी तुम से बढ़ कर और कुछ नहीं है। तुम तो अनाथों के स्वामी हो ही अतः हम शरणार्थियों के शरण बनो, तुम दुखियों के दुखों को हरने वाले हो और हे भगवान्! तुम्ही शरण देने वाले हो। इस प्रकार की स्तुति से वह दया का समुद्र भगवान शंकर प्रत्यक्ष होकर मधुर वाणी से, देवताओं को सुख देने वाले वचन कहने लगा। हे देवता लोगो! मैंने उस दुष्ट राक्षस की सारी बातें सुन ली हैं परन्तु मैंने ही उसे बढ़ाया है अतः मैं ही उसका नाश नहीं कर सकता हूँ। इसलिये आप लोगों को, शरण में आये हुओं के दुखहर्ता, क्षीरसागर में रहने वाले, शेषनाग पर सोये हुए, शंख, चक्र, गदाधारी चतुर्बाहु नारायण की शरण में जाना चाहिये। भगवान शंकर उन्हें इस प्रकार बिदा देकर स्वयं अन्तर्ध्यान हुए। अनन्तर सारे देवता हर्ष भरे मन वाले क्षीर समुद्र में पहुँच कर जगत्पति विष्णु की स्तुति करने लगे।

देवा :— नमो नमो ह्यनन्ताय रूपातीताय वै नमः ।
नमः सर्वस्वरूपाय सर्वातीताय वै नमः ॥२११॥
गुणेशाय गुणज्ञाय गुणातीताय वै नमः ।
सर्वेशाय च सर्वाय सर्वगाय च ते नमः ॥२१२॥
वेद्याय वेद्यरूपाय वेदगम्याय ते नमः ।
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यानातीताय वै नमः ॥२१३॥
जगत्कर्त्रे नमस्तुभ्यं जगद्धर्त्रे च वै नमः ।
जगत्पालनसंसक्तचित्ताय चित्स्वरूपिणे ॥२१४॥
इति स्तुत्या तु देवेशि ! प्रसन्नोऽभूद्दयापरः ।
उवाच वचनं देवान् सर्वदुःखनिवारणम् ॥२१५॥
गच्छध्वं देवदेवेशाःनाकं शोकहरं परं ।
तं दुष्टं सकुलं हन्मि वातरूपं दुरासदम् ॥२१६॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्भक्तानामार्तिनाशनः ।
पातालाद्गिरिजे देवि ! प्रादुर्भूतो जगत्प्रभुः ॥२१७॥
शेषारूढश्चतुर्बाहुः सलक्ष्मीकोऽपि सायुधः ।
आज्ञापयामास तदा शेषं शतफणान्वितं ॥२१८॥
वातं पिब फणीन्द्र ! त्वं सहस्र वदनैस्तथा ।
प्राणां[1]स्तर्पय नागेश यतस्त्वं पवनाशनः ॥२१९॥
एवं श्रुत्वा भगवतो वचनामृतमुत्तमं ।
प्रादुर्भूतश्च तं दैत्यं वायुरूपं पपौ क्षणात् ॥२२०॥
पुनर्वातस्य शेषो वै नाभवद्गिरिमस्तके ।
पुनश्च वसतिश्चक्रे पन्नगो परमे वने ॥
तदा प्रभृति ते देवा निर्विघ्नासन् शिवे सदा ! ॥२२१॥

अनन्त तथा रूपादि से रहित भगवान को प्रणाम हो। सब स्वरूपों में व्याप्त तथा सब से परे नारायण को प्रणाम हो। गुणों के स्वामी, गुणों को जानने वाले तथा गुणों से परे विष्णु को प्रणाम हो। सबों के स्वामी, समग्र, तथा सर्वव्यापी भगवान तुझे प्रणाम हो। ज्ञेयपदार्थ, ज्ञेयरूप, तथा

---

1. १ पंक्ति क, ख, घ पु० अधिक पाठ ।

बेदों से ज्ञेय भगवान तुझे प्रणाम हो। ध्यानरूप, ध्यान से ही ज्ञेय तथा ध्यान से बाह्य भगवान को प्रणाम हो। हे जगत् के कर्ता, जगत के हर्ता, जगत के पालन की ओर लगे हुए मनवाले चित्स्वरूप! भगवान तुझे प्रणाम हो। हे देवेशि! इस प्रकार की स्तुति से वह दयालु प्रसन्न होकर देवों के दुखों को हरने वाले वचन कहने लगा। हे देवाधिदेवो! तुम शोक रहित स्वर्गधाम में चले जावो। मैं उस उद्दण्ड वायुरूपधारी राक्षस को कुल के सहित नष्ट करूंगा। भक्तों के दुखों को हरण करने वाला भगवान यह कह कर अन्तर्ध्यान हुआ और हे पर्वतपुत्री! अनन्तर वह चतुर्बाहु, जगत् का स्वामी फिर भी लक्ष्मी के साथ आयुध धारण करके शेषनाग पर चढ कर पाताल से प्रकट हुआ। अनन्तर उसने सौ फणों वाले शेषनाग को आज्ञा दी कि हे सर्पराज! तुम तो पवनाशी हो अतः तुम हजारों मुखों से पवन का पान करो। शेष ने भगवान के अमृतमय वचन सुनते ही उस वायुरूपधारी राक्षस को क्षणमात्र में में पोलिया ताकि पहांड की चोटी पर फिर वायु का शेष भी नहीं रहा। अनन्तर वह सर्प भी एक घने वन में रहने लगा और उस दिन से ले कर देवता लोग निर्विघ्न हो गये।

पुनः प्रोवाच भगवान् शेषञ्च पवनाशिनं।
अत्र तिष्ठ फणीन्द्र! त्वं भयं नाशय वातजम् ॥२२२॥
तदाप्रभृति देवेशि! नागोऽभूच्छेषसंज्ञितः।
सुश्रुमोऽप्यभिधो नागो वर्णितो योगिसत्तमैः ॥२२३॥
सुखेनात्र[1] स्तुतो लोकस्तस्मान्नागोऽपि सुश्रुमः।
स्वाश्रमोऽपि बुधैः प्रोक्तो नागराजो नु सुन्दरि! ॥२२४॥
यस्मात्सुखेन लब्धो वै स्वाश्रमं त्रिदिवौकसैः।
अत्र दर्शनमात्रेण मुच्यते पापराशिकत् ॥२२५॥
[2]दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात् दानाद्धोमाज्जपात्तथा।
स्वाध्यायस्तुतिपाठाच्च ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात् ॥२२६॥
महागोनस[3] नामानमारुहेत्पर्वतोत्तमं।
यत्रारोहणमात्रेण न गच्छेद्यममन्दिरम् ॥२२७॥

---

1. ३ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ। 2. २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ। 3. आधुनिक महागुनस।

सप्तमः परिच्छेदः ।

भैरवी :— सुश्रमस्तु महादेव ! श्रुतो भवदनुग्रहात् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि तीर्थं वै वायु[1]वर्जनम् ॥२२८॥
किमुक्तं मठिकास्तत्र कुर्वते प्रस्तरैः शुभै ।
वद मे कृपया शम्भो ! तत्र तीर्थे च किं फलम् ॥२२९॥

भैरव :— फिर भगवान ने पवनभक्षी शेष से कहा,—कि हे सर्पराज ! तुम यहीं पर रह कर वायु से उत्पन्न होने वाले भय का नाश करते रहो । हे देवेशि ! उस दिन से लेकर वहां पर शेष नाम वाला नाग बन गया । उत्तम योगियों ने इसी का नाम सुश्रम भी रखा है । सुश्रुम इसको इसलिये कहते हैं कि यहां पर सारे जीव सुख से पूर्ण हो जाते हैं । अथवा इसको स्वाश्रम भी कहा जाता है क्योंकि इसी नागराज की सहायता से देवताओं ने सुखपूर्वक अपने आश्रम प्राप्त किये । इसके दर्शनमात्र से ही पापी मनुष्य भी छूट जाता है । यहां पर दर्शन, स्पर्श, स्नान, दान, हवन, जप, स्वध्याय, तथा स्तुतिपाठ से अनन्त पुण्य मिलता है । अनन्तर मनुष्य महोगोनस नाम वाले उत्तम पर्वत पर चढे क्योंकि इस पर्वत पर चढने से कभी भी यम का दरवाज़ा देखना नहीं पडता है ।

सप्तम परिच्छेद समाप्त हुआ ।

भैरवी :—हे महादेव ! आपके अनुग्रह से मैंने सुश्रुम का वृत्तान्त सुन लिया । अब मैं वायुवर्जन तीर्थ का वृत्तान्त सुनना चाहती हूँ । हे शम्भू ! आपने क्या कहा था कि वहां अच्छे पत्थरों से छोटे २ मठ बनाये जाते हैं तथा साथ ही कृपया यह भी कहिये कि उस तीर्थ पर क्या फल मिलता है ?

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मठदानंविधिं शुभां ।
मठदानात्परं नास्ति ह्यन्यदानं सुरार्चिते ! ॥२३०॥
मठान्हि प्रस्तरैः कृत्वा श्रेष्ठैः स्थूलैश्च शोभनैः ।
साङ्गनैर्गृहसम्भारैर्वासोभिः समलङ्कृतैः ॥२३१॥
विधिवत्पूजनं कुर्यात्गृहाणां तत्र पार्वति !

---

1. आधुनिक वावजन ।

यथा विभवद्रव्येण ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२३२॥
मठदानं कृतं यैस्तु तत्र पर्वतसप्तके ।
ते यान्ति शिवसदनं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२३३॥
देवैश्च पिष्ठान् दैत्यांस्तु पृषितो नाम दानवः ।
श्रुत्वा समीरणो भूत्वा बबाधे देवतांस्तदा ॥२३४॥
वायुना परिभूतास्तु देवास्ते शरणं गताः ।
देवदेवं महादेवं तुष्टुवुः परया गिरा ॥२३५॥

देवा :— नमो देवाधिदेवाय शर्वाय शम्भवे भवे ।
आदिमध्यान्तशून्याय पराय प्रभवे नमः ॥२३६॥
नमो भैरवरूपायापमृत्युविनाशिने ।
[1]कलानिधिविभूषाय कालरूपाय ते नमः ॥२३७॥
श्वेतशान्ताय देवाय भीमाय भवनाशिने ।
भयानकाय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ॥२३८॥
नमोऽमृतस्वरूपाय शान्तरूपाय ते नमः ।
अमरेशाय देवाय भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥२३९॥

हे देवि ! सुन मैं तुम्हें मठदान की पवित्र विधि कहता हूँ क्योंकि हे देवपूजिते ! मठदान से बढ कर और कोई दान नहीं है । हे पार्वती ! अच्छे मोटे तथा सुन्दर पत्थरों से मठ बना कर उन्हें आङ्गनों से, घर की सामग्रियों से तथा वस्त्रों से सजाना चाहिये । फिर शास्त्रोक्त विधि से उन की पूजा करके यथासम्भव धन के साथ ब्राह्मणों को दान में देना चाहिये । उन सात पर्वतों की (मध्यवर्ती अधित्यका पर) जिन्होंने मठदान किया वह उतने समय तक शिवलोक में जाते हैं जितने समय तक चौदह इन्द्रों की स्थिति है । इसी दौर में पृषित नामक राक्षस ने देवताओं द्वारा (पेषगिरि पर) राक्षसों का पीसा जाना सुन कर वायु का रूप धारण करके देवताओं को सताना आरम्भ किया । वह देवता लोग वायु से अनादृत होकर देवों के देव शंकर की शरण में आकर, उत्कृष्ट वाणी से उसकी स्तुति करने लगे ।

देवता :—देवों के नायक, मङ्गलस्वरूप, कल्याण के उत्पत्तिस्थान, संसार के

---

1 २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ ।

दुखों का दलन करने वाले, आदि, मध्य तथा अन्त से हीन, परदेवता को प्रणाम हो। भैरव रूप धारण कर अकालमृत्यु का नाश करने वाले, चन्द्रकला से अलंकृत, कालस्वरूप भगवान को प्रणाम हो। निर्मल, शान्त, देवस्वरूप, उग्ररूप, भवबन्धन तोडने वाले, भयानक देवता, तथा मुञ्ज घास की तागडी लगाये हुए शंकर को प्रणाम हो। हे अमृत स्वरूप, शान्तात्मा अमरेश देव! मैं आपको बार २ प्रणाम करता हूँ।

इति श्रुत्वा नुतिं प्रीतः कृतां परमदेवतैः।
जगाद भगवान्भूयो देवान्परमया मुदा ॥२४०॥
भैरवः :— श्रुतं मया पूर्वमेव बाधनं दानवस्य हि।
अत्रैव मठिकां कृत्वा तिष्ठध्वमविशङ्कया ॥२४१॥
मठिकासु च देवेशाः कुरुध्वं वायुवर्जनं।
इत्थं कृत्वा ततो देवा मठिकास्तत्र प्रस्तरैः ॥२४२॥
स्थिता तत्रैव देवेशि! मठिकासु सुविस्मिताः।
वायुः शशाम सुमहान् दैत्यः परमदारुणः ॥२४३॥
दर्शयामास तदुग्रं रूपं दैत्यः पुरन्दरं।
दृष्ट्वा दैत्यमुग्ररूपं इन्द्रो वज्रं समादधे ॥२४४॥
अहनद्दानवं देवस्तत्रैव वायुवर्जने।
यस्माच्छशाम सुमहान्वायुरूपश्च दानवः ॥२४५॥
तस्मात्प्रोक्तं पुराविद्भिस्तीर्थं वै वायुवर्जनम्।
स्नानं दानमर्चनञ्च कृत्वा वै वायुवर्जने ॥२४६॥
अनन्तं पुण्यमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने।
मठिकां[1] ये न कुर्वन्ति तत्रैव वायुवर्जने ॥२४७॥
दारुणं नरकं यान्ति शतकल्पं न संशयः।
यो न कुर्यान्महादेवि! स्नानं दानं जपं हविः ॥२४८॥
स याति नरकं घोरं तत्तीर्थं तस्य निष्फलं।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातकपञ्जरात् ॥२४९॥

उत्तम देवताओं द्वारा की हुई स्तुति से भगवान प्रसन्न होकर उनसे कहने लगे :—

1. २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ।

भैरव :—मैंने राक्षस की पीडाओं को पहिले ही सुन लिया है अतः हे देवो ! तुम यहीं पर मठिकायें बना कर निश्शंक मन से रहो और उन्हीं में अपने आप को वायु से बचाओ। हे देवेशि ! इस प्रकार देवता लोग वहां पत्थरों से मठ बनाकर विस्मयपूर्वक उन में निवास करने लगे। अत्यन्त भयावह वायुरूपवाली धारी राक्षस का उपद्रव शान्त हो गया परन्तु उस राक्षस ने अपना वही भयानक रूप इन्द्र को दिखाया। इन्द्र ने उस राक्षस के भयावह रूप को देख कर वज्र हाथ में उठाया और उसे वहीं वायुवर्जन के स्थान पर मार डाला। जिस कारण इस स्थान पर वायुरूपधारी भयङ्कर राक्षस मौत के घाट उतारा गया अतः प्राचीन विद्वानों ने इस तीर्थ का नाम वायुवर्जन रखा। मनुष्य वायुवर्जन में स्नान, दान तथा पूजा करने से अनन्त पुण्य प्राप्त कर लेता है। हे सुन्दर मुखी ! यह सत्य है जो लोग वायु-वर्जन में मठिकायें नहीं बनाते हैं वह निसंदेह सौ कल्पों तक कठिन नरकों को जाते हैं। जो मनुष्य यहां पर स्नान, दान, जप हवन नहीं करता है हे देवी ! वह घोर नरक को जाता है और उसका इस तीर्थ पर आना ही व्यर्थ है। हे देवि ! इस प्रकार मैंने वायुवर्जन तीर्थ का वर्णन तुम्हें सुनाया इसके श्रवण अथवा पठन से मनुष्य बडे पापों के पिञ्जरे से मुक्त होता है।

भैरवी :— वद सत्यं महादेव शुष्कं[1] वै सर उत्तमं।
सरोवरमभूद्देव शुष्कीभूतं कथं किल ? ॥२५०॥
शृणु सुश्रोणि ! वक्ष्येऽहं शुष्कीभूतं सरोवरं।
येन विज्ञातमात्रेण नरो मुच्येत संशयात् ॥२५१॥
हतशेषाणि रक्षांसि तिरोभूतानि वै हृदि।
तस्मिन्नेव पुरा देवि ! देवांस्ते च बबाधिरे ॥२५२॥
कुर्वन्तो मुनिसङ्घानां विघ्नांश्चैव समन्ततः।
एकदा तत्र तौ देवि ! स्वेच्छया ह्यागतौ तदा ॥२५३॥
वीक्ष्य प्रबाधितांस्देवान् राक्षसैः परमेश्वरौ।
तत्र परमकारुण्यादेवी देवमुवाच ह ॥२५४॥
दयालो परमेशान ! पश्यैतान्मुनिसत्तमान्।
विघ्नितान्राक्षसौघैर्हि पीडितानपि शङ्कर ! ॥२५५॥

1. आधुनिक होखसर।

श्रुत्वा देवीवचः सोऽपि हूङ्कारमकरोत्तदा ।
हूङ्काराभिहता दैत्या मग्नास्ते तु सरोवरे ॥२५६॥
मग्नान्दृष्ट्वा ततो देवि शशाप सर उत्तमं ।
मुनिविघ्नकरान्यस्माद्राक्षसान्दैत्वदानवान् ? ॥२५७॥
शुष्कीभव सरस्तस्माद्धव्यकव्यविवर्जितः ।
इति शापेन तद्दिव्यं सरः शुष्कमभूत्किल ॥२५८॥
शुष्कीभूताच्च सरसो निर्गता रक्षसां गणाः ।
नाशयामास स्वगणैः पाशमुद्गरपाणिभिः ॥२५९॥
तदा प्रभृति देवेशि ! नष्टं शुष्कं सरोऽभवत् ।
शेषो[1] रक्षोगणो यस्माद्याति विघ्नकरः प्रिये ! ॥
तस्मान्मौनेन प्रचलेत्तत्स्थानाज्जदम्बिके ! ॥२६०॥

हे महादेव ! अब आप उत्तम शुष्क सर के विषय में कहिये अर्थात् किस प्रकार वह सरोवर सूख गया था। हे पतली कमर वाली ! सुनो अब मैं शुष्क सर का वर्णन करता हूँ, जिसको जानने से मनुष्य के सब संशय दूर हो जाते हैं। हे देवी ! मर कर बचे हुए राक्षस प्राचीन काल में उसी सरोवर में छिप कर देवताओं को सताने लगे और चारों ओर से मुनियों के समूहों पर विघ्न डालने लगे। एक दिन राक्षसों से सताये जाने वाले देवताओं को देखकर वह शिव तथा पार्वती दोनों स्वेच्छा से उधर आ निकले। वहां अत्यन्त दयाशील देवी शंकर से बोली कि हे देव ! राक्षसों के झुण्ड से सताये जाने वाले इन उत्तम मुनियों की ओर तो देखिये। देवी के वचन सुन कर शिव ने एक हूङ्कार किया जिस से वह राक्षस परास्त होकर सरोवर में मग्न हो गये। अनन्तर सर में डूबे हुए राक्षसों को देख कर देवी ने उस उत्तम सर को शाप दिया कि हे सरोवर जिस कारण मुनियों पर विघ्न डालने वाले राक्षस दैत्य दानवों को तुमने छिपाया है ? अतः तुम हव्य तथा कव्य से हीन होकर सूख जावो। सूखे हुए सर

? वाक्य असम्पूर्ण सा लगता है। मूल पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन करने पर भी पाठ में कोई हेर फेर न हो सका अतः अनुवाद करते समय कल्पना से काम लिया गया। 1. २ पंक्तियां क, ख, घ पु० अधिक पाठ।

से राक्षसों का समूह बाहिर निकल आया और शंकर ने पाश मुद्गर इत्यादि अस्त्रों को धारण करने वाले शिवगणों के द्वारा उनका नाश करवाया। हे देवी! उसी दिन से वह सर सूख कर नष्ट हो गया। हे प्यारी! बचे खुचे राक्षस अब भी वहां से चलने वालों पर विघ्न डालते हैं अतः उस स्थान से मौन धारण करके सरकना चाहिये।

भैरवी :— वद सत्यं महादेव! पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीं।
यां दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरभवैरघैः ॥२६१॥
पुण्यमक्षयमाप्नोति यत्र स्नानान्महेश्वर!।
दानाद्यत्र महेशान! फलमाप्नोति यागजम् ॥२६२॥

भैरव :— शृणु सुन्दरि! वक्ष्येऽहं पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीं।
यां स्नात्वा पुण्यमाप्नोति हयमेधादिकं प्रिये! ॥२६३॥
पुरा ताण्डवलग्नस्य नृत्यमानस्य धूर्जटेः।
कपर्दः शिथिलो भूतः पञ्चधा हि महेश्वरि! ॥२६४॥
ततो वै पञ्चधा देवि! प्रादुर्भूता कपर्दतः।
गङ्गा भगवती देवी महापातक नाशिनी ॥२६५॥
या पञ्चधा महेशानि! कपर्दान्निसृता नदी।
सैव प्रोक्ता पुराविद्भिर्नदी पञ्चतरङ्गिणी ॥२६६॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गायां यत्फलं लभेत्।
तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा पञ्चतरङ्गिणीम् ॥२६७॥
गा[1] हिरण्यं सुवासांसि क्षौमं चन्दनमेव च।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमृगनाभिमपीश्वरि! ॥२६८॥
यो ददाति द्विजश्रेष्ठो शैवं पदमवाप्नुयात्।
[2]आरुहेद्रत्नशिखरं ततो डामरकं व्रजेत् ॥२६९॥

---

1 २ पंक्तियां क, ख, पु० अधिक पाठ। 2. आधुनिक 'भैरव बाल' दस बीस वर्ष से तो इस रास्ते से यात्रियों का जाना काश्मीर राज्य ने बन्द किया है क्योंकि कहा जाता है कि उन दिनों कई संन्यासी रत्नशिखर की चोटी से अपने आप को गिरा कर मारते थे और अपने आपको शिव के अर्पण करते थे। इस प्रकार एक बड़े जन-समुदाय का व्यर्थ हत्याकाण्ड होता था।

दृष्ट्वा डामरकं तत्र शिलीभूतं महागणं ।
पुण्यमाप्नोति मनुजो अश्वमेधादियागजम् ॥२७०॥

इत्यष्टमः परिच्छेदः ।

भैरवी :—हे महादेव ! पवित्र पञ्चतरङ्गिणी नदी का सच्चा वृत्तान्त बताइये जिसको सुनकर मनुष्य जन्म जन्म के पापों से मुक्त होता है, और हे महेश्वर ! जहां पर स्नान करने से अक्षय पुण्य तदा दान देने से यज्ञ करने का फल मिलता है।

भैरव :—हे सुन्दरी ! सुन मैं पवित्र पञ्चतरङ्गिणी का वर्णन सुनाता हूँ जहां स्नान करने से अश्वमेध इत्यादि यज्ञों का फल मिलता है। हे महेश्वरी ! प्राचीनकाल में ताण्डव में निरत शिव का जटाजूट नर्तन करते समय पांच भागों में बिखर गया। हे देवी ! उस कपर्द के पांचों भागों से महा पापों को नाश करने वाली गङ्गा भगवती बह चली। हे महेश्वरि ! जो नदी कपर्द के पांच शाखाओं में बह चली उसी का प्राचीन विद्वानों ने पञ्च-तरङ्गिणी यह नामकरण किया। कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गङ्गा में जो फल प्राप्त होता है वही फल पञ्चतरङ्गिणी में स्नान करने से मिलता है। जो ब्राह्मण गाय, सोना, अच्छे वस्त्र, रेशम, चन्दन, केसर, अगरु, कपूर, नाफा इत्यादि द्रव्य यहां पर दान देता है उसे शिव पद प्राप्त होता है। फिर रत्नशिखर पर चढ़ कर डामरक के पास जाना चाहिये। डामरक वास्तव में एक प्रधान शिवगण पत्थर के रूप में परिणत हुआ है। उसके दर्शन से मनुष्य को अश्वमेधादि यज्ञों से उत्पन्न होने वाला फल मिलता है।

अष्टम परिच्छेद समाप्त हुआ।

भैरवी :— कोऽसौ डामरको नाम भवता कथितस्तु यः ।
गणः कथं शिलीभूतो वद सत्यं महेश्वर ! ॥२७१॥

भैरव :— शृणु वक्ष्ये महेशानि गणं डामरकाभिधं ।
येन कर्मविपाकेन शिलीभूतो गणेश्वरः ॥२७२॥
पुरा नर्तनशीलस्य धूर्जटेः सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
षण्मुखं क्रीडयानस्य सन्ध्याकालोऽत्यगात्प्रिये ॥२७३॥

सध्यातिवाहनात्तस्य चिन्ता मनसि चाभवत्।
चिन्तमानस्य तस्यैवं देवी पृष्टवती मुहः ॥२७४॥
किमिदं चिन्तसे देव ! का चिन्ता भगवंस्तव।
वद सत्यं महादेव मनो मे शर्म नाश्नुते ॥२७५॥
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्तस्याः प्रियचिकीर्षया।
प्रावदत् भगवान्देवीं सन्ध्याकालोऽत्यगान्मम ॥२७६॥
सन्ध्यालोपान्मया प्राप्ता चिन्ता च महती प्रिये !।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धूर्जटेः ॥२७७॥
प्रत्युवाच पुनर्देवी भगवन्तं सनातनं।
अयं महागणो देव ! डामरं गृह्य तिष्ठतु ॥२७८॥
सन्ध्याया वेदनार्थञ्च चिरकालं महेश्वर !।
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्तथेत्युक्त्वा महेश्वरः ॥२७९॥
हर्षयन् षण्मुखं तत्र पुनर्देव्याः सहालपत्।
तदा प्रभृति देवेशि ! महाडामरको गणः ॥२८०॥
तस्थौ सन्ध्यावेदनार्थं भवस्य सुरपूजितः।
एकदा क्रीडमानस्य शिवस्य तनुजं स्वकम् ॥२८१॥
गणः प्रमादनिद्रायां लीनोऽभूद्वरवर्णिनि !।
संध्याकालो पुनस्तस्य व्यत्यगाच्च कपर्दिनः ॥२८२॥

भैरवी :—हे महेश्वर ! आपने जिस डामरक के विषय में कहा वह कौन व्यक्ति था और किस प्रकार पत्थर बन गया।

भैरव :—हे महेश्वरी ! सुनो मैं डामरक का वृत्तान्त कहता हूँ कि किस दुष्कर्म के कारण वह पत्थर बन गया। हे प्रिये ! प्राचीनकाल में दो संध्याओं के समय ताण्डव करने वाले शंकर का कुमार जी के साथ खेलने में निरत होने के कारण संध्याकाल ही ढल गया। संध्या के ढल जाने से उसके मन में चिन्ता हुई और उसको चिन्तित मुद्रा में देख कर देवी बार २ पूछने लगी। "हे भगवान् ! आप क्या सोचते हैं ? आपको कौनसी चिन्ता है ? आप सच्ची बात बताइये क्योंकि मेरे मन में उदासी छा रही है।" भगवान बोले हे प्यारी ! मेरा संध्याकाल ढल जाने के कारण मेरे संध्या के कार्य-क्रम में लोप आया अतः मुझे बहुत चिन्ता

है। देवों के भी देव शंकर के वचन सुनकर देवी ने उत्तर दिया कि हे महेश्वर! यह आपका मुख्य सेवक आपको संध्या के समय सचेत करने के लिये चिरकाल तक डमरू हाथ में लेकर रहे। महेश्वर ने देवी के वचनों के साथ सहानुभूति दिखाई और स्वयं कुमार जी को हर्षाते हुए देवी के साथ वार्तालाप करने में मग्न हुए। हे देवी! उसी दिन से देवताओं से भी मान्य डामरक नाम वाला प्रमुख गण शंकर को संध्याकाल से सचेत करने के लिये वहां रहने लगा।

हे सुन्दर मुख वाली! एक दिन जब कि शंकर अपने पुत्र के साथ खेलते थे वह सेवक प्रमाद की निद्रा में अचेत हो गया, और उसकी असावधानी से शंकर का संध्या समय बीत गया।

विमृश्य संध्यालोपं स देवदेवो भवः स्वयं।
क्रुधा शशाप गिरिजे! महाडामरकं गणं ॥२८३॥
यस्मान्निद्रावशेनैव संध्यालोपस्त्वया कृतः।
मम तस्माच्चिरं तिष्ठ शिलीभूतो गणाधिप! ॥२८४॥
इति शप्त्वा गणं तत्र देवदेवो हरः स्वयं।
तस्थौ ध्यानस्थितो देवि! चिरं तस्मिन्महीधरे ॥२८५॥
तदा प्रभृति देवेशि! महाडामरको गणः।
दृषद्रूपोऽभवत्तत्र रत्नपर्वतमूर्धनि ॥२८६॥
यः कश्चिन्मानवो लोके गणं डामरकं श्रयेत्।
स याति ब्रह्मसायुज्यमिति सत्यं वदामि ते ॥२८७॥
यः कश्चिदपि चेशानि! पुण्यं गर्भगृहं[1] श्रयेत्।
गर्भात्स मुच्यते जन्तुरिति सत्येन ते शपे ॥२८८॥

भैरवी :— गर्भागारश्च को देव किमर्थं तत्र स्थापितः।
किं फलं निस्सृतानाञ्च नाराणामद्य तद्वद ॥२८९॥

भैरव :— शृणु वक्ष्ये महादेवि! गर्भागारमनुत्तमं।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकपञ्जरात् ॥२९०॥

---

1. आधुनिक 'गर्भयात्रा'।

पुरा नन्दिनमासाद्य भृशं देवा विवादिनः ।
निषिद्धास्तेन तत्रैव युयुधुस्ते परस्परम् ॥२६१॥
सुरैर्विना तदा नन्दी प्रणिपत्य परं हरं ।
दण्डं त्यक्त्वा चविज्ञाप्तिं चकार सुरपूजिते ! ॥२६२॥
भगवन्करुणासौध ! लोकनाथ जगत्पते ! ।
उद्विजामि भृशं त्रस्तो देवेभ्य इति चेश्वरम् ॥२६३॥

हे पार्वती ! भगवान शंकर को जब संध्या के लुप्त होने का ध्यान आया तो क्रोधी होकर प्रमुख गण डामरक को शाप दिया। हे प्रधान गण ! जिस कारण प्रमाद में पडकर तूने मेरी संध्या का लोप किया अतः तुम यहीं पर चिरकाल तक पत्थर बनकर रहो। हे देवी ! भगवान उस गण को इस प्रकार शाप देकर स्वयं चिरकाल पर्यन्त उसी पर्वत पर समाधि में लीन हुए। हे देवी ! उसी दिन से लेकर वह डामरक नाम वाला गण रत्न-पर्वत की अधित्यका पर पत्थर बन गया है। जो कोई भी मनुष्य संसार में उसी डामरक गण की शरण में आता है, मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ कि वह परब्रह्म में लय हो जाता है। हे देवी ! मैं तुम्हारी कसम खाकर सच कहता हूँ कि यदि कोई मनुष्य पवित्र गर्भागार में प्रवेश करता है वह पुनः गर्भ में आने से छूट जाता है।

भैरवी :—हे देव ! गर्भागार किस को कहते हैं, वह वहां पर क्यों रखा गया है, और उस में से निकलने वालों को क्या फल मिलता है ?

भैरव :—हे देवी ! सुनो मैं उत्तम गर्भागार का वृत्तान्त कहता हूँ जिसको सुनकर मनुष्य भयङ्कर पापों के पिञ्जरे से मुक्त होता है। प्राचीन काल में आपस में विवाद करते हुए देवता लोग नन्दी के पास आये, उससे निषेध किये जाने पर भी उन्हें आपस में युद्ध छिड ही गया। हे देवपूजिते ! अनन्तर नन्दी देवों के बिना ही भगवान शंकर को प्रणाम करके दण्ड नीचे रखकर प्रार्थना करने लगा कि हे दयालु, लोगों के नाथ, जगत्पति ! मैं देवों के भय से अत्यन्त उद्विग्न हो गया हूँ।

श्रुत्वा नन्दिवचो देवि ! हरः प्रोवाच तं मुदा ।
गृहाण दण्डं भो नन्दिन् ! किं करिष्यन्ति ते सुराः ॥२९४॥
गर्भद्वारमिदं सम्यक् स्थापयाशु समन्ततः ।
यतो निस्सरणे शक्ति न लभन्ते सुरासुराः ॥२९५॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य महेशस्य महागणः ।
महत्प्रस्थं समुत्पाट्य गर्भागारं चकार वै ॥२९६॥
गर्भागारान्निस्सरति यः कश्चिन्मानवः प्रिये ! ।
स याति शिवासायुज्यं न पुनस्तन्यपो भवेत् ॥२९७॥
यः कश्चिदपि चेशानि ! भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
मातृहा पितृहा चैव सुरापो भ्रातृहापि च ॥२९८॥
स याति परमं दिव्यं पदं माहेश्वरं प्रिये !
कलौ पापवनं चेत्त्वं प्रसभं छेत्तुमिच्छसि ॥२९९॥
तदाश्रय सुदेवेशि ! गर्भागारं नु पुण्यदम् ।
गोलः[1] कुण्डजो वापि यः कश्चिदत्र निस्सृतः ॥३००॥
स भवेत्तु गणो देवि ! चेति सत्येन ते शपे ।
स्नात्वामरवतीं पुण्यां नदीं परम पावनां ॥३०१॥
भस्माङ्कसितदेहश्च बहुवस्त्रविवर्जितः ।
प्रलपन्[2] 'शिवपन्थानं देहि मे परमेश्वर' ! ॥
नमः करोतु देवेशं गुहास्थममरेश्वरम् ॥३०२॥

इति नवमः परिच्छेदः

नन्दी के वचन सुनकर भगवान हर्ष से उसे बोले कि हे नन्दी ! तुम दण्ड को उठाओ देवता तेरा क्या बिगाड सकते हैं ? तुम शीघ्रतापूर्वक अपने इरद गिरद एक गर्भागार बनाओ क्योंकि उस में से देव तथा

1. १ पंक्ति क, ग, पु० अधिक पाठ।
2. पति के जीते ही उपपति से उत्पन्न सन्तान कुण्डज और पति के मरने के बाद उपपति से उत्पन्न सन्तान गोलक कहलाती है। 'अमृते जारजः कुण्डः मृते भर्त्तरि गोलकः' अमरकोश ।

राक्षस भी निकल न सकेंगे। प्रमुख गण नन्दी ने शंकर के वचन सुन कर एक बड़े पत्थर को तोडकर गर्भागार बना डाला। हे प्रिये ! यदि कोई मनुष्य गर्भागार के मध्य में से निकलता है तो वह शिव स्वरूप बन जाता है और उसे फिर कभी बच्चा नहीं बनना पडता है। हे ईश्वरी ! जो कोई भी गर्भघाती, गुरुपत्नी के साथ संग करने वाला, मातृघाती, पितृघाती शराबी अथवा भ्रातृघाती हो वह भी यहां पर पवित्र दिव्य माहेश्वरपद प्राप्त कर लेता है। हे देवी ! यदि तू भी कलियुग के पाप समूहों का बल पूर्वक छेद करना चाहती हो तो पवित्र गर्भागार की शरण में चली जावो। जो कोई भी जारज अथवा कुण्डज इस गर्भागार में से निकलता है मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ कि वह भी गण बन जाता है। अनन्तर पवित्र नदी अमरावती में स्नान करके, विभूति से शरीर को सफेद बना कर, थोड़े से वस्त्र पहन कर, 'हे शंकर ! मुझे मार्ग दीजिए' इस प्रकार के वाक्य का उच्चारण करता हुआ, गुफा में स्थित देवों के देव अमरेश्वर की वन्दना करे।

भैरवी :— स्मारं स्मारं महेशान ! पुण्यं माहात्म्यमुत्तमं।
तीर्थानां परमं दिव्यं निवृत्तास्मि भवार्णवात् ॥३०३॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि ह्यमरेशं महेश्वरं।
कथं स ह्यमरेशाख्यो गुहास्थोन्वभवत्किल ? ॥३०४॥
नदी च परमा दिव्या कथं सा ह्यमरावती।
तत्सङ्गमस्य माहात्म्यं वद मे हितकाम्यया ॥३०५॥

भैरव :— 'साधु[1] साधु महाभागे प्रश्नमेतत् सुदुर्लभं।
कृतं त्वया पूजितया जनानां हितकाम्यया ॥३०६॥
शृणु वक्ष्ये महातीर्थममरेशस्य सुन्दरि !।
यच्छ्रुत्वापि प्रमुच्येत महापातककोटिभिः ॥३०७॥
नासद्वासीन्नो सदासीत्तदानीमपि चेश्वरि !।
नियतिरभवत्तस्मात् केवलात्परमात्मनः ॥३०८॥

1. २ पंक्तियां ख, ग, पु० अधिक पाठ।

[1]नियतेरहमुत्पन्न इति शुश्रुम सुन्दरि !।
अहमः मृत्युरभवत् सेन्द्रा देवा ममानुगाः ॥३०६॥
ऋषयः पितरश्चापि गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
यक्षा भूतगणाश्चापि कूष्मांडभैरवादयः ॥३१०॥
मनुष्या जम्बुकाः क्रूरा दैत्यदानवपुंगवाः ।
एते चान्ये च बहव उत्पन्ना नियतेः स्वयं ॥३११॥
चतुर्दशविधो भूतसर्गः प्रादुरभूत्ततः ।
मृत्युस्तानग्रसत्सर्वान्देवानपि सवासवान् ॥३१२॥
देवास्ते मृत्युना ग्रस्ता व्याकुला ह्यभवन् प्रिये ! ।
मामेत्य शरणं जग्मुः शरण्यं परमेश्वरं ॥
तुष्टुवुः[2] परमप्रीत्या शिवं भवमनामयं ॥३१३॥

भैरवी :—हे महेश्वर ! मैं तीर्थों के पवित्र दिव्य माहात्म्य का स्मरण करने से भवसागर के पार हो गई हूँ। अब तो मैं महेश्वर अमरेश का वृत्तान्त सुनना चाहती हूँ कि किस प्रकार वह अमरेश्वर गुफा में स्थित हुए थे, और वह पवित्र दिव्य अमरावती नदी किस प्रकार प्रादुर्भूत हुई थी, तथा साथ ही यह भी मेरा हितकार करने के लिए कहिये कि अमरावती के सङ्गम का क्या माहात्म्य है ?

भैरव :—हे पूजनीया, बड़े भाग्यवाली देवी ! तुम्हें शाबाश हो तुमने तो लोगों के हितकार करने की इच्छा से यह अत्यन्त दुर्लभ प्रश्न मुझ से किया। हे सुन्दरी ! सुन मैं तुम्हें अमरेश नामक महान तीर्थ का वर्णन सुनाता हूँ जिसको सुनने से ही मनुष्य करोड़ों भयावह पापों से भी मुक्त हो जाता है। हे ईश्वरी ! सृष्टि के पूर्व न किसी वस्तु का भाव ही था और न अभाव ही। उस समय केवल परमेश्वर की सत्ता विद्यमान थी जिस से प्रकृति उत्पन्न हुई। हे सुन्दरि ! सुना जाता है कि प्रकृति से 'अहं' की उत्पत्ति हुई तथा 'अहं' से मृत्यु तथा मेरे सेवक इन्द्रादि देवता भी उत्पन्न हुए। इनके साथ ही (उसी मूल प्रकृति से) ऋषि, पितर, गन्धर्व, सर्प,

1. १ पंक्ति क, ख पु० अधिक पाठ। 2. १ पंक्ति ख पु० अधिक पाठ।

राक्षस, यक्ष, भूत, कूष्मांड, भैरव आदि, मनुष्य, शृगाल आदि पशु, राक्षस, बड़े बड़े दानव तथा दूसरे जीव उत्पन्न हुए। अर्थात् संक्षेप में यों कहा जाता है कि चौदह प्रकार की जीवसृष्टि उसी नियति से प्रादुर्भूत हुई। मृत्यु ने उन सब इन्द्रादि देवों को खाना आरम्भ किया। हे प्रिये! वह देव मृत्यु से ग्रस्त होने के कारण अत्यन्त व्याकुल होकर, शरण देने वाले परमेश्वर, निर्विकार मुझ शंकर की शरण में आकर अत्यन्त हर्ष से मेरी स्तुति करने लगे।

देवा :— नमः[1] शिवाय देवाय विभवे प्रभविष्णवे।
नमश्चिच्चन्द्रिकोद्बोध प्रकाशानन्दरूपिणे ॥३१४॥
परमार्थदशास्थाय स्थाणवे विश्वभाविने।
नमश्चित्याय चेत्याय चेतज्ञाय चितर्थिने ॥३१५॥
चिच्चन्द्रनाशिताशेषमोहध्वान्ताय शम्भवे।
विमर्शिने विधिज्ञाय विज्ञानाय नमो नमः ॥३१६॥
विश्वज्ञाय च विश्वाय जय विश्वोपकारिणे।
विश्वरूपाय देवाय विश्वावासाय ते नमः ॥३१७॥
नमो विधिनिषेधाय विधिज्ञपतये नमः।
निषेधज्ञाय देवाय तत्स्वरूपाय ते नमः ॥३१८॥
इडा पिङ्गलरूपाय नमस्तन्मध्यवर्तिने।
सुषुम्णामध्यगायापि सूक्ष्माय शम्भवे नमः ॥३१९॥
नमस्ते सर्वमृग्याय मोक्षमार्गार्थदर्शिने।
नमो नियतिरूपाय तत्वरूपाय ते नमः ॥३२०॥
महत्तत्वाय देवाय सूक्ष्मतत्वाय ते नमः।
नमोऽमृताय देवाय नमोऽमृतस्वरूपिणे ॥३२१॥
मृत्युञ्जयाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः।
इति श्रुत्वा तु देवानां स्तुतिं परमपावनाम् ॥३२२॥
हरो गम्भीरया वाचा देवांस्तान्प्रत्युवाच ह।
किमर्थमागता यूयमाकुलाः सुरसत्तमाः ॥३२३॥

---

1. १ पंक्ति क, ग पु० अधिक पाठ।

कथयध्वं यतस्सर्वमदेयमपि वो ददे ।
इति तस्य महेशस्य श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।।३२४।।
प्रत्यूचुस्तं हरं मृत्युर्ग्रसतीति बलाद्धि नः ।
यतो न मृत्युर्नश्येन्नो न ग्रसेच्च बलेन ह ॥
तत्कुरुष्व महादेव! भक्तानामार्तिनाशन! ।।३२५।।

देव :—मंगलस्वरूप देवता, सर्वैश्वर्यमान, सर्वशक्तिमान, शिव को प्रणाम हो। विमर्शमय चन्द्रिका के, प्रति समय प्रबुद्ध होने के कारण केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय, तथा परदशा में स्थित होकर ही (बाह्य उन्मेष द्वारा) विश्व की कल्पना करने वाले शंकर को प्रणाम हो। चित्स्वरूप, शुद्ध विमर्श के ही विषय, चेतन होने से सर्वज्ञ, केवल चिति के विस्फारात्मक अर्थ वाले तथा चितिशक्ति की कौमुदी से अपास्त किये हुए मोहतिमिर वाले शम्भू को प्रणाम हो। विमर्शमय, विधिनिषेधादि से परिचित, ज्ञान मय, विश्व को जानने वाले, विश्वरूप तथा विश्व के कल्याण पर निरत शिव को जय जयकार हो। विश्वरूप देवता, विश्वविग्रह, विधि निषेधरूप, विधि जानने वालों के भी अधीश, निषेध से परिचित (अर्थात् बाह्य निमेष द्वारा संसार का निषेध करने वाला) देवस्वरूप शंकर! तुझे प्रणाम हो। इडा तथा पिंगला स्वरूप, उन दोनों की मध्यवर्तिनी सुषुम्णास्वरूप, सुषुम्णा के भी मध्यवर्ती सूक्ष्म पर ब्रह्मरूप! तुझे प्रणाम हो। सबों से ढूँडने के योग्य, मोक्ष मार्ग दिखाने वाले, प्रकृतिरूप तथा ३६ तत्वरूप तुझे प्रणाम हो। महत्तत्वरूप तथा सूक्ष्मतत्वरूप, अमरवर देने वाले, सदा अमर होने के कारण मृत्युञ्जय देव को बार बार प्रणाम हो।

इस प्रकार देवों की परम उत्कृष्ट स्तुति को सुनकर शंकर गम्भीर वाणी से देवताओं को बोले, हे देवता लोगो! तुम व्याकुल होकर क्यों आये हो? कहो तो मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ। इन्द्रादि देवों ने उस शंकर के वचन सुनकर उत्तर दिया, कि हे भगवान! मृत्यु बल से हमें खाये जा रहा है। भक्तों की पीडा हरने वाले महादेव आप वैसा कोई उपाय कीजिए जिस से मृत्यु बलपूर्वक हमारा नाश न कर बैठे।

श्रुत्वा देववचः सौम्ये ! महेशः प्रत्युवाच तान् ।
मृत्यूपायं करिष्यामि सहध्वं क्षणमुत्तमाः ॥३२६॥
गृहीत्वा शिरसस्तत्र हरः चन्द्रकलां स्वयं ।
सम्पीड्य देवानददन्मृत्युभैषजमुत्तमम् ॥३२७॥
पीडनाद्या निस्सृता च धारा परमात्मिके ! ।
सैव भूता पुण्यनदी नाम्ना या ह्यमरावती ॥३२८॥
ये बिन्दवश्च्युता देवि ! शरीरेऽमृतबिन्दवः ।
ते भस्मरूपतां प्राप्य च्युता चाश्यानतां गताः ॥३२९॥
प्रेम्णा तेषां महादेवि ! शिवोऽपि द्रवतामगाव् ।
तेऽवलोक्य शिवं तत्र द्रवीभूतं महेश्वरि ! ॥३३०॥
तुष्टुवुः वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणेमुश्च पुनः पुनः ।
रस आश्यानतां प्राप्य लिङ्गरूपोऽभवद्गिरौ ॥३३१॥
लिङ्गरूपं हरं वीक्ष्य घनीभूतं महेश्वरि ! ।
पुनः पुनर्नमश्चक्रुर्भवं कारुणिकं परं ॥३३२॥
देवान् नुतिपरान् दृष्ट्वा प्रोवाच सुरसत्तमान् ।
हरः परमया वाचा शृणुध्वं देवसत्तमाः ! ॥३३४॥
यस्माद्भवद्भिर्दृष्टं मे प्रेमलिङ्गं दरीगृहे ।
तस्मान्न मृत्युर्युष्मान्वै बाधते मदनुग्रहाव ॥३३५॥
इहैव[1] ह्यमरा भूत्वा गच्छध्वं देवसत्तमाः ।
इतो प्रभृति लिङ्गं मे ह्यमरेशाख्यमुत्तमम् ॥३३६॥
पुण्यं परमकं देवास्त्रिलोके ख्यातिमेष्यति ।
नत्वा च दण्डवत्तत्र लिङ्गं तदमरेश्वरं ॥
प्रदक्षिणीकृत्य देवाः स्वं स्वमालयमाययुः ॥३३७॥

हे सुन्दरि ! शंकर देवताओं के वचन सुनकर बोले कि हे देवो! तुम क्षणमात्र तक इस दुःख को सहन करो अभी मैं तुम्हारे मृत्यु का उपाय करता हूँ। भगवान् ने स्वयं अपने सिर से चन्द्रकला को उतारा और निचोड कर देवताओं को मौत से बचने की उत्तम दवाई दे दी।

1. १ पंक्ति ख, ग पु० अधिक पाठ।

हे भगवती ! चन्द्रकला को निचोडने से जो धारा बह चली वही एक पवित्र नदी बन गई जिस का नाम अमरावती है। हे देवी ! जो अमृत की छींटें शिव के शरीर पर पड गाईं वह जम कर विभूति का रूप धारण कर गईं और हे देवी ! देवों के स्नेह से शिव स्वयं पिघल गये। हे महेश्वरी ! देवता लोग वहां पर पिघले हुए शंकर को देखकर अर्थपूर्ण वाणियों से स्तुति करते हुए बार बार प्रणाम करने लगे। वह पिघला हुआ रस जम कर पहाड पर लिङ्गाकार बन गया। हे महेश्वरी ! देवता लोग जम कर लिङ्गाकार बने हुए परमदयालु शंकर को देखकर—बार बार नमस्कार करने लगे। उत्तम उत्तम देवताओं को स्तुति करते हुए देखकर भगवान उत्तम वाणी बोले,—कि हे देवता लोगो ! सुनो यतः तुमने गुफा में मेरे प्रेमलिङ्ग का दर्शन किया अतः मेरे अनुग्रह से मृत्यु आपको सता न सकेगी। हे देवो ! तुम यहीं से अमर बन कर चले जाओ और आज से यह मेरा पवित्र लिङ्गस्वरूप तीनों लोकों में अमरेश नाम से प्रसिद्ध होगा। देवता लोग उस अमरेश्वर लिङ्ग को दण्डवत् प्रणाम करके तथा प्रदक्षिणा भी करके अपने घर चले गये।

इति दत्त्वा वरं देवानमरेशो महेश्वरि !।
तदा प्रभृति लीनोऽभूद्गिरिद्रयन्तरे हरः ॥३३८॥
अमां सोमकलां गृह्य ह्यीश्वराणां हितेप्सया।
मृत्युनाशं चकाराशु तस्माद्वै ह्यमरेश्वरः ॥३३६॥
मृत्युहीना यतो देवि ! ईश्वरेण कृताः सुराः।
ततः प्रोक्तं पुराविद्भिर्ह्यमरेश्वरसंज्ञकम् ॥३४०॥
भवरोगञ्च गृह्णाति भक्तानां चेश्वरः स्वयं।
यद्दर्शनात्ततः प्रोक्तममरेश्वरसंज्ञकम् ॥३४१॥
अमा प्रभृति पूर्णान्तं कलां गृह्णाति चेश्वरः।
ततः प्रोक्तश्च तन्त्रज्ञैर्भगवानमरेश्वरः ॥३४२॥
यद्बिन्दुरसनश्चैव जरामरणमोचनं।
मोक्षैश्वर्यप्रदं तस्मात्प्रोक्तममरसंज्ञकम् ॥३४३॥
इदं रसमयं लिङ्गं महाप्रेमसमुद्भवं।
सामरस्यप्रदं देवि ! तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥३४४॥

यात्रां कृत्वा तु देवेशि ! स्नात्वामरावतीजले ।
भस्मनालिप्य चाङ्गानि मोक्षमाप्नोति मानवः ॥३४५॥
कुर्याद्यो[1] ताण्डवं देवि ! गुहायां सुप्रहर्षितः ।
स रुद्र एव कथितो नरः परम पावनः ॥३४६॥
यः सवासा गुहास्थञ्च प्रपश्येल्लिङ्गमुत्तमं ।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३४७॥
यः पश्येद्भस्महीनाङ्गः सुधालिङ्गं सनातनं ।
स कुष्ठी च भवेद्देवि ! जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ॥३४८॥
यात्रामकृत्वा यो देवि ! प्रपश्येदमरेश्वरं ।
स याति दारुणान्घोरान्नरकानेकविंशतिम् ॥३४९॥

हे महेश्वरी ! देवताओं को इस प्रकार वर देकर अमरेश गुफा में लीन हुए। इस को अमरेश्वर इसी लिये कहते हैं क्योंकि इसने अमा अर्थात् चन्द्रकला को लेकर देवताओं के हितकार के लिये मृत्यु का नाश किया। अथवा हे देवी ! जिस कारण ईश्वर ने देवों को अमर कर दिया अतः प्राचीन विद्वानों ने इसका नाम अमरेश्वर रख दिया। अथवा जिस के दर्शन से ईश्वर स्वयं ही भक्तों को संसाररूपी रोग से छुटकारा देते हैं उसका नाम अमरेश्वर है।

तन्त्र जानने वालों ने इसी कारण इसका नाम अमरेश्वर रखा क्योंकि यह अमा कला से लेकर पूर्ण कला तक कलाओं का ग्रहण करता है। जिसके एक एक बिन्दु का अस्वाद करने से जरा तथा मरण से मुक्ति और मोक्षपद की प्राप्ति होती है उसको अमरनाथ कहते हैं। हे देवी ! समरसता को देने वाले, अत्यन्त प्रेम से उत्पन्न रसलिङ्ग का वृतान्त मैंने तेरे स्नेहातिरेक से ही तेरे सामने प्रकट किया। हे देवेशी ! यात्रा के अनन्तर अमरावती के जल में स्नान करके अपने अङ्गों पर विभूति का लेप करने से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे देवी ! जो मनुष्य गुफा में प्रसन्न होकर ताण्डव नृत्य करता है वह परम पवित्र मनुष्य साक्षात् रुद्र ही माना गया है। जो मनुष्य वस्त्रों के सहित ही गुफा में विद्यमान लिङ्ग का दर्शन करे वह उतने

1. ३१ पंक्ति क, ख पु० अधिक पाठ।

समय तक घोर नरकों में जाता है जितने समय तक १४ इन्द्रों की स्थिति है।

हे देवो ! जो मनुष्य भस्म का लेप करने के बिना ही प्राचनी अमरलिङ्ग का दर्शन करता है वह कुष्ठी होकर जन्म जन्म में पापी बनता है। हे देवी जो मनुष्य विधिपूर्वक यात्रा को न करके ही अमरेश्वर का दर्शन करता है वह २१ भयङ्कर नरकों को जाता है।

योऽकृत्वा ताण्डवं देवि ! पश्येद् गिरिगुहान्तरे ।
सुधालिङ्गं भवत्येव तीर्थद्रोही न संशयः ॥३५०॥
योऽपूज्य प्रतियात्येव नरोऽमरगुहान्तरात् ।
चतुरशीतिलक्षाणि नरकाणि प्रयाति वै ॥३५१॥
योऽदत्त्वा पुनरायाति ह्यमरेशगुहान्तरात् ।
स याति दारुणं घोरं नरकं कालसूत्रकम् ॥३५२॥
महापातक[1] युक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः ।
दृष्ट्वा रसमयं लिङ्गं सद्यो मुच्येत सुन्दरि ! ॥३५३॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च सुरापः स्वर्णहारकः ।
एते दृष्ट्वा महेशानममरेश्वरसंज्ञकम् ।
मुच्यन्ते तत्क्षणादेवि ! सत्यं सत्यं वरानने ! ॥३५४॥
अभक्ष्यभक्षी मधुपः सुरेज्यात्यागी प्रिये ! वत्सहा बालहाच ।
गर्भाघाती स्रावकृत्पानकृच्च सद्यो मुच्येद्वीक्ष्य मां लिङ्गरूपम् ॥३५५॥
महाक्रोधी लोभमोहाभिभूतः स्वर्णस्तेयी परजायाभिगामी ।
छिद्रप्रेक्षी साधुनिन्दारतश्च दम्भी चौरोऽनृतवागल्पबुद्धिः ॥३५६॥
दृष्ट्वा देवममरेशाख्यलिङ्गं द्रवीभूतं पर्वतस्यान्तरे हि ।
मुच्येत्तस्मात्पापसंघाच्च देवि ! सत्यं सत्यं नानृतं ते वदामि ॥३५७॥
चान्द्रयणैः[2] कृच्छ शतैर्महासंतापनैश्च यत् ।
फलं प्राप्नोति लोकेऽस्मिन्तत्प्राप्नोत्यस्य दर्शनात् ॥३५८॥
कलिकल्मषघोरनाशनं रसलिङ्गं समुदीरितं प्रिये !।
अमरेश्वरनामकं परं तत्पशुपाशविनाशकारणम् ॥३५९॥

---

1. १ पंक्ति क, ख पु० अधिक पाठ। 2. १ पंक्ति ख, ग, पु० अधिक पाठ।

सिद्धिलिङ्गमिदं देवि ! बुद्धिलिङ्गमिदं परं।
शुद्धिलिङ्गमिदं प्रोक्तं वृद्धिलिङ्गं सनातनम् ॥३६०॥
इदं पुंसवनं लिङ्गं महातेजोऽभिवर्धनं ॥
कन्याप्रदं पुत्रप्रदं परमं योगदं कलौ ॥३६१॥

हे देवी ! जो ताण्डव करने के बिना ही गुफा में रसलिङ्ग का दर्शन करता है निसंशय वह तीर्थ के साथ द्रोह करता है। जो मनुष्य पूजा करने के विना ही अमरेश्वर की गुफा से वापस आता है वह ८४ लाख नरकों को जाता है। जो मनुष्य दान देने के बिना ही अमरेश्वर की गुफा से लौट आता है वह कठिन कलसूत्र नामक नरक को जाता है। हे सुन्दरी ! उत्कट पापों से अथवा साधारण पापों से आवृत मनुष्य भी रसलिंग का दर्शन करके तत्क्षण मुक्त होता है। हे सुन्दर मुखवाली देवी ! गर्भघाती, गुरुपत्नी को गमन करने वाला, शराबी, सोना चुराने वाला, यह सारे अमरेश नामक भगवान का दर्शन करने से मुक्त होते हैं। हे प्रिये ! अभक्ष्य खाने वाला, शराबी, देवयज्ञों से विमुख, बछडे अथवा बच्चे को मारने वाला, गर्भघाती, गर्भपात करने वाला अथवा अपेय पान करने वाला मनुष्य मुक्त लिंगस्वरूप का दर्शन करने से मुक्त होता है। हे देवी ! तुम झूठ न समझना मैं निस्संदेह सच कहता हूँ कि अत्यन्त क्रोधी, लोभ तथा मोह से भरा हुआ, स्वर्णचौर, परस्त्रीगमन करने वाला, दूसरे के दोषों को ढूँढने वाला, साधुओं की निन्दा पर निरत, दम्भी, चौर, असत्य कहने वाला तथा अल्पबुद्धि ये सारे भी पर्वत की गुफा में द्रवीभूत अमरेश लिंग का दर्शन करने से छूट जाते हैं। जो फल चान्द्रायणों से, सैंकडों कष्ट, अथवा उत्कट संतापों के सहने से मिलता है वह इसके दर्शन से मिलता। हे प्रिये ! यह रसलिंग कलि के कठिन मलों का नाश कारक कहा गया है। इसका दूसरा नाम अमरेश है और यह माया और सांसारिकता का नाश करने वाला है। हे देवी ! इसी को सिद्धि लिंग, बुद्धिलिंग, शुद्धिलिंग, पुरातन वृद्धिलिंग, पुंसवनलिंग इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। यह तेज को बढ़ाने वाला तथा कन्या पुत्रादि फलदायक, कलियुग में उत्कृष्ट योगसिद्धि को देने वाला है।

विना ध्यानं विना दानं सिद्धिं देवि ! यदीच्छसि ।
तदाश्रयस्व शीघ्रं वै लिंगममरसंज्ञकम् ।।३६२।।
शरीरं यौवनं द्रव्यं दारान् पुत्रान् गृहांस्तथा ।
चञ्चलान्सर्वतो ज्ञात्वा ह्यमरेशं समाश्रयेत् ।।३६३।।
यावन्न ग्रसते मृत्युर्यावन्नेन्द्रियविप्लवः ।
यावन्न जरया देहं जीर्यते जगदम्बिके ! ।।३६४।।
तावदेवामरेशाख्यं लिंगं रसमयं श्रयेत् ।
त्रैलोक्ये[1] यानि तीर्थानि प्रोक्तानि जगदम्बिके ! ।।३६५।।
अमरेशाख्यलिंगस्य कलां नार्हन्तिषोडशीम् ।
महामोहेन[2] ग्रस्तोऽयं जनः सर्वो महेश्वरि ! ।।३६६।।
अमरेशेऽपि भूमिस्थे यच्छोचति कलौ नरः ।
भूयो भूयः किमुक्तेन नरः पातकवान् कलौ ।।३६७।।
अमरेशं समाश्रित्य मुक्त एव न संशयः ।
नारी वा पुरुषो वापि पूजयेल्लिंगमुत्तमम् ।।३६८।।
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते ।
पीत्वा ह्यमरधारां तु पतितां तां गुहान्तरे ।।३६९।।
देवि ! याति शिवं स्थानं यत्र नास्ति कृताकृतं ।
दृष्टुममरनाथस्य पदं यश्च व्रजेद् गृहात् ।।३७०।।
पदे पदेऽश्वमेधानां प्राप्नोति फलमुत्तमं ।
इत्थं माहात्म्यमीशानि ! पुण्यममरनाथकम् ।।३७१।।
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ।
कपोतांस्तु गणांस्तत्र दृष्ट्वा हृष्टश्च यो नरः ।।३७२।।
जयेति प्रवदेदुच्चै रुद्र एव न संशयः ।
इत्येष पटलो गुह्यो गोपनीयः सदा प्रिये ! ।।
श्रुतोऽनुध्यातः पठितो महापातकहा स्मृतः ।।३७३।।

इति दशमः परिच्छेदः ।

---

1. १ पंक्ति क पु० अधिक पाठ । 2. १ पंक्ति क, ख पु० अधिक पाठ ।

हे देवी ! यदि तुम ध्यान तथा दान के विना ही परमार्थ सिद्धि चाहती हो तो शीघ्र अमरेश्वर की शरण ले लो। प्रत्येक व्यक्ति को शरीर, जवानी, धन, स्त्री, पुत्र, घर इत्यादि वस्तुओं को क्षणभङ्गुर समझ कर अमरेश का आश्रय लेना चाहिये। हे जगत की माता ! जब तक मृत्यु ग्रास न करे, जब तक इन्द्रियां ढीली न पड जायें, जब तक बुढ़ापा शरीर को जीर्ण न करे तब तक ही अमरेश नामक रसलिंग की शरण में जाना चाहिये। हे जगन्माता ! तीनों लोकों में जितने भी तीर्थ हैं वह अमरलिंग के १६वें भाग के समान भी नहीं हैं। हे महेश्वरी ! वास्तव में सारे लोग महामोह के अन्धेरे से ग्रस्त हैं कि वह कलियुग में भूमि पर अमरेश जैसा तीर्थ होते हुए भी शोक में पड़े हैं। बार बार कहने का क्या प्रयोजन है कलियुग में पापी मनुष्य यदि अमरेश का आश्रय ले ले तो वह निसंशय मुक्त ही है। स्त्री हो या पुरुष जो कोई भी उत्तम (अमर) लिंग की पूजा करे वह दुःखों से उन्मुक्त होकर शिव के साथ अभेद प्राप्त करता है। हे देवी ! मनुष्य, गुफा में पडने वाली अमरधारा को पीकर उस शैवपद को जाता है जहां न पुण्य है और न पाप। जो मनुष्य अमरेश का स्थान देखने की इच्छा से घर से निकले उसे कदम कदम पर अश्वमेधयज्ञों का फल मिलता है। हे ईश्वरी ! यह पवित्र अमरनाथ का माहात्म्य सुनने या पढ़ने से मनुष्यों को करोडों ब्रह्महत्याओं से मुक्ति मिलती है। जो मनुष्य वहां कबूतररूप धारी शिवगणों को देखकर फूले न समाता हुआ ऊंची आवाज में जैकार के नकारे बजाता है वह निसंशय साक्षात् रुद्र ही है। हे प्यारी ! यह रहस्यपूर्ण पटल हमेशा गुप्त रखना चाहिये क्योंकि यह सुनने से अथवा पढ़ने से ही भयङ्कर पापों को नाश करने वाला कहा गया है।

दशम परिच्छेद समाप्त हुआ।

भैरवी :— कपोता के गणास्तत्र कथं नूनं स्थिताः प्रभो !।
वद मे कृपया शम्भो ! लोकानां हितकाम्यया ॥३७४॥

भैरव :— शृणु सुश्रोणि ! वक्ष्यामि कपोता येऽभवन् किल।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयात् ॥३७५॥
यदाप्रभृति शप्तोऽभून्महाडामरको गणः।
तदाप्रभृति तत्रैव स्थापितास्ते गणास्तथा ॥३७६॥

तथैव वेदनार्थं हि सन्ध्याकालस्य सुन्दरि ! ।
एकदा नृत्यमानस्य संध्यायां चैव धूर्जटेः ॥३७७॥
स्पर्धया कुरु कुर्वीत्यूचुस्ततोऽमरवन्दिते ।
परस्परं स्पर्धयात्र शब्दं कुर्विति चक्रिरे ॥३७८॥
ततः स महेशानो गणानशपदोजसा ।
यस्मात्कुरु कुरु शब्दं कुरुथ स्पर्धया मुहुः ! ॥३७६॥
तस्मात् कुरु कुरु शब्दं कुर्वाणाः स्थ चिरं गणाः ।
कपोतरूपास्तीर्थेऽस्मिन् विघ्नसंघापहारिणः ॥३८०॥
इत्थं[1] शप्तास्ततो देवि ! हरेण परमात्मना ।
भूताः कपोतरूपास्ते तीर्थे विघ्नापहारिणः ॥३८१॥
योऽदृष्ट्वा तु गुहान्तस्थान् कपोतान् प्रमथान्प्रिये ! ।
अवारुहेद्गिरेस्तस्मात्तीर्थद्रोही मतो बुधैः ॥३८२॥
तस्मादत्र दर्शनीयाः कपोता गणसत्तमाः ।
महापापहराः प्रोक्ता यतिभिः पारमार्थिकैः ॥३८३॥

इत्येकादशः परिच्छेदः ।

भैरवी :— श्रुत्वा श्रुत्वा महेशान ! स्मारं स्मरामनुत्तमं ।
पुण्यंममरनाथाख्यं लिंगं यत्कथितं तव ॥३८४।
कृतार्थास्मि[2] कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः ।
क्रीतास्मि देवदेवेश ! तारितास्मि भवार्णवात् ॥३८५॥

भैरवी :—हे प्रभु ! कबूतर कौन से शिवगण हैं, और वहां क्योंकर रहते हैं ? हे शम्भू ! कृपया लोगों को हितकार करने के लिये सारा वृत्तान्त कहिये

भैरव :—हे अच्छी कमर वाली ! सुन मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि कबूतर वास्तव में कौन थे, इसको सुन कर मनुष्य उत्कट पापों से मुक्त होता है । जिस दिन से महाडमरक गण को शाप दिया गया उसी दिन से उसके बदले और गण उसी प्रकार संध्याकाल से सचेत कराने के लिये वहां स्थापित

1. ३ पंक्तियां क पु० अधिक पाठ । 2 ३ पंक्तियां क, ग पु० अधिक पाठ ।

किये गये। एक दिन जब भगवान शंकर संध्याकाल में नृत्य कर रहे थे तो हे देवपूजिते! वह भी आपस में स्पर्धा से 'कुरु कुरु' (अर्थात् तुम भी करो तुम भी करो) इस प्रकार शब्द करने लगे। महेश्वर ने क्रोधी होकर उन गणों को शाप दिया, —कि गणो जिस कारण तुम स्पर्धा से 'कुरु कुरु' शब्द कर रहे हो अतः तुम इसी तीर्थ पर चिर काल तक कबूतर बन कर 'कुरु कुरु' ही करते रहो। (हां केवल तुम में यह शक्ति होगी) कि तुम यात्रियों के विघ्नों को दूर करते रहोगे। हे देवी! परम पुरुष शंकर द्वारा यह शाप पाकर वह कबूतर बन गये और तीर्थ पर विघ्नों को नाश करते रहते हैं। हे प्यारी! जो कोई भी गुफा में विद्यमान कबूतरों को देखने के बिना ही उस पर्वत से उतरता है उसे विद्वान लोग तीर्थद्रोही समझते हैं, इसलिये इस तीर्थ पर कपोतरूपधारी उत्तम गणों का दर्शन अवश्य करना चाहिये क्योंकि परमार्थ पथ के पथिक संन्यासी उन्हें पापनाशक कहते हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद समाप्त हुआ।

भैरवी :—हे महेश्वर! आपके कहे हुए अमरनाथ नामक पवित्रस्थान का वर्णन सुन सुन कर तथा स्मरण करके मैं निसंशय कृतार्थ हुई हूँ और आपने मुझे मोल लेकर संसार सागर से पार उतार दिया है।

जय शम्भोः त्रिनेत्रेश! जय भक्तकृपाम्बुधेः!।
शिव! सर्व! जयेशान! त्रिपुरासुरसूदन! ॥३८६॥
जय कपर्दिन्भगवञ्जय शूलधराच्युत!।
पिनाकपाणे! वरद जयान्धकविमर्दन! ॥३८७॥
जय भक्तजनोद्दामकामनावरदेश्वर!।
जय भक्तिरसास्वादसारिताखिलविश्वप! ॥३८८॥
जय घोरातिघोरेश जय पाशनिकृन्तन!।
जय भैरव भीमेश! जय श्रीपरभैरव! ॥३८९॥
तारितास्मि भवाम्बोधेरुद्धृता भवकर्दमात्।
कथितं यत्वया नाथ! पुण्यं ह्यमरनाथजम् ॥३९०॥
माहात्म्यममरेशस्य श्रुतं भवदनुग्रहात्।
अधुना वद देवेश! संशयोऽस्ति महान्मम ॥३९१॥

कस्मिन्काले स्मृता यात्रा महाफलप्रदायिनी ।
दर्शनात्स्मरणाद्वापि गमनाच्चैव सुन्दर ! ॥३६२॥
श्राद्धाच्चाप्यमरावत्यां पञ्चनद्याश्च संगमे ।
दानात्किं फलमाप्नोति नरः पातकवान्कलौ ॥३६३॥
विशेषतश्च किं प्रोक्तं दानं सुरवरार्चित ! ।
यत्कृत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥३६४॥
फलममरनाथस्य विस्तरेण वदस्व मे ।
भैरव :— साधु पृष्टं त्वया देवि ! यतो भक्तिस्तवानघे ! ॥३६५॥
पवित्रे ह्यमरेशाख्ये तीर्थे परमपावने ।
यतः स्वं दर्शयामास श्रावण्यां स हरः वपुम् ॥३६६॥
ततश्च कथिता यात्रा श्रावण्यां पुण्यदायिनी ।
श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रां कृत्वा विधानतः ॥३६७॥
यः प्रपश्येत्पूर्णिमायां सुधालिङ्गं सनातनं ।
याति शैवं पदं सोऽपि पशुपाशविवर्जितः ॥३६८॥
यः श्रावण्यां महादेवि ! प्रपश्येद्गिरिमध्यगं ।
लिङ्गममरनाथाख्यं स याति शिवसन्निधौ ॥३६९॥

हे त्रिनेत्र ईश्वर ! भक्तों पर दयालु, सर्वव्यापक, त्रिपुर राक्षस के मृत्यु, शिव आपको जय हो। कपर्द (जटाजूट) धारण किये, त्रिशूलधारी भगवान तथा भक्तों को दुर्लभ कामनापूर्ति के वर देनेवाले ईश्वर ! आपकी जय हो। भक्ति रस के आनन्द से संसार को भरने वाले ! संसार के त्राता ! रुद्ररूप तथा संसार के पाश को काटने वाले भैरवरूप परदेवता, आपकी जय हो। हे नाथ ! आपने मुझे पवित्र अमरनाथ का माहात्म्य सुनाकर संसार सागर से पार लगाया, और संसार की दुःख रूपी कीचड से निकाल दिया। हे देवेश ! आपकी कृपा से मैंने अमरेश का माहात्म्य सुना, अब मुझे केवल एक संशय है—कि यह यात्रा किस समय में दर्शन, स्मरण अथवा गमन से उत्कृष्ट फलदायिनी होती है और कलियुग में पापी लोगों को अमरावती और पंञ्चतरणी के संगम पर श्राद्ध करने से क्या फल मिलता है ? विशेषकर यह बताइये कि इस स्थान पर कौन वस्तु दान

देने से मनुष्य करोड़ों महापापों से मुक्त होता है ? हे देव ! मुझे अमरनाथ का फल विस्तार से कहिये।

भैरव :—हे देवी ! तुमने यह एक अच्छा प्रश्न मुझ से पूछा क्योंकि तुम्हें तो परमपवित्र अमरेश तीर्थ पर भक्ति है। जिस कारण भगवान शंकर ने श्रावण पूर्णिमा के दिन अपना स्वरूप दिखाया है अतः यह यात्रा भी श्रावण के महीने में ही उत्कृष्ट फलदायिनी कही गई है। श्रावण शुक्लपक्ष में विधिपूर्वक यात्रा करके पूर्णिमा के दिन जो अमृतलिंग का दर्शन करे, वह पशुता अथवा पाश से छूटकर शिवपदवी प्राप्त कर लेता है। हे देवी ! जो श्रावणीपूर्णिमा के दिन पर्वत की गुफा में विद्यमान अमरनाथ लिंग का दर्शन करे वह शिव के ही समीप जाता है।

स्पर्शनाद्देवदेवस्य लिङ्गस्य जगदीशितुः।
पापकञ्चुकनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ॥४००॥
मुक्ताभिः[1] स्वर्णपुष्पैश्च रौप्येण सुरसुन्दरि !।
प्राप्नोति वै महापुण्यममरेशस्य पूजनात् ॥४०१॥
नरो मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने !।
अन्यैश्च विधिवद् द्रव्यैः पूजयेद्योऽमरेश्वरं ॥४०२॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैः पुण्यमाप्नोति यागजम्।
आरात्रिकां महेशस्य घृताभ्युक्तां करोति यः ॥४०३॥
तिलतैलाभिषिक्तां वा स याति परमं पदं।
घृतगुग्गुलु[2] संयुक्तं यो धूपयति सुन्दरि ! ॥४०४॥
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो याति सादाशिवं पदं।
प्रदक्षिणञ्च देवेशि ! यः कुर्यादमरेश्वरे ॥४०५॥
पदे पदेश्वमेधानां सहस्रं प्राप्नुयान्नरः।
ततोऽवरुह्य[3] शैलात्तु श्रयेत्संगममुत्तमम् ॥४०६॥
श्राद्धं कृत्वा विधानेन तर्पयेत् पितृदेवताः।
मोदन्ति पितरस्तस्य नृत्यन्ति च समन्ततः ॥४०७॥

---

1. ५ पंक्तियां क, ग पु० अधिक पाठ। 2. १ पंक्ति ख, ग पु० अधिक पाठ।
3. १ पंक्ति क, ख पु० अधिक पाठ।

अद्य कुर्वन्ति दायादाः संगमे श्राद्धमुत्तमं ।
चूडामणौ[1] महायोगे कुरुक्षेत्रे च तर्पणात् ॥४०८॥
यां तृप्तिं पितरो यान्ति तां यान्ति संगमे प्रिये ! ।
गा हिरण्यं सुवासांसि क्षौमं रौप्यमपीश्वरि ! ॥४०९॥
मुक्ताफलं चापि दत्त्वा याति सादाशिवं पदं ।
विशेषतः पीठदानममरेशस्य सुन्दरि ! ॥४१०॥
मुक्तिदं प्रोक्तमित्येतत् सत्यं सत्यं वरानने ! ।
भैरवी :— किमिदं पीठदानस्य शिवस्य भगवंस्त्वया ।
कथितं तन्महेशान ! वद मे हितकाम्यया ॥४११॥

जगत्पिता देवदेव के लिंग को स्पर्श करने से ही पाप की केंचुली से मुक्त होकर परम शिव पद प्राप्त किया जाता है। हे सुन्दरी ! जो फल, मोती, सोने के फूल अथवा रजतदान देने से मिलता है वह अमरेश की पूजा से ही मिलता है। हे सुन्दर मुखवाली ! मनुष्य निसंदेह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य अमरेश की पूजा विधिपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य अथवा और वस्तुओं से करता है उसे यज्ञों का फल मिलता है। जो मनुष्य शंकर को घृतपूर्ण तथा तिल तैलादि से युक्त आरात्रिका (कश्मीरी आलथ) अर्पण करता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। हे सुन्दरी ! जो घी तथा गुग्गुलु से युक्त धूप परिकल्पित करता है वह सब दुःखों से मुक्त होकर सदाशिव पद को प्राप्त कर लेता है। हे देवेशि ! जो अमरेश्वर की प्रदक्षिणा करता है उसे पद पद पर हजारों अश्वमेधों का फल प्राप्त होता है। अनन्तर पर्वत से उतर कर संगम पर जाना चाहिये और वहां विधिपूर्वक श्राद्ध करके पितरों तथा देवों को तृप्त करना चाहिये। उन मनुष्यों के पितर यह जानकर, कि आज हमारे दायाद संगम पर हमारा श्राद्ध करने वाले हैं—खुशी के मारे नाचने लगते हैं। उत्कृष्ट चूडामणि योग पर अथवा कुरुक्षेत्र पर तर्पण करने से पितरों को जो तृप्ति मिलती है वह संगम पर पिंडदान से मिलती है। (संगम पर) गाय, सोना, अच्छे वस्त्र, रेशम चांदी तथा मोतीदान देने से सदाशिव पद मिलता

---

1. २ पंक्तियां क, ख, ग पु० अधिक पाठ।

है। हे सुन्दरी ! मैं यह सच कहता हूँ कि विशेष करके संगम पर अमरेश का पीठ दान में देना मुक्तिप्रद कहा गया है।

भैरवी :—हे भगवान ! आपने यह शंकर के पीठदान की बात क्या कही ? मेरे हितकार के लिए सम्पूर्ण बात स्पष्ट करके कहिये।

भैरव :— पलपञ्चकमादाय यवपिष्टस्य सुन्दरि !।
सचतुर्भद्रकं कृत्वा लेपयित्वा च कुङ्कुमैः ॥४१२॥
कर्पूरैश्चन्दनैश्चापि मृगजैश्च महेश्वरि !।
चतुष्कोणेषु संस्थाप्य सुवर्णानां चतुष्टयम् ॥४१३॥
मध्ये सुवर्णमेकञ्च स्थापयित्वा सुरोत्तमे !।
अथवा रौप्यमुद्राणां पञ्चकं मनुजेश्वरि ! ॥४१४॥
अर्चयित्वा गन्धपुष्पैर्ब्राह्मणाय समर्पयेत्।
आधारशक्त्यादिभिर्मन्त्रैः पूजयित्वा सुवासयेत् ॥४१५॥
वस्त्रैः श्वेतपटैर्दिव्यैस्तथा यज्ञोपवीतकैः।
दक्षिणाभिश्च निष्कैश्च मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ॥४१६॥
"यात्रा साफल्यहेतोर्हि ह्यमरेशस्य चाक्षयं।
पीठं मयार्पितं दिव्यं सुवासोभिरलङ्कृतम् ॥४१७॥
मृत्युञ्जय महादेव ! मया संसारभीरुणा।
अर्पितं त्वत्स्वरूपाय ब्राह्मणाय महात्मने ॥४१८॥
इदं गृहाण विप्रेशस्वरूपिन् ! भवशासनात्।
पीठं ह्यमरनाथस्य महापापापनुत्तये ॥४१९॥
यन्मया दुष्कृतं किञ्चित्कृतं गुर्वन्यथापि वा।
भ्रूणहत्यादिकं वापि सुरापानमपीश्वर ! ॥४२०॥
गुरुहत्यादिकं[1] वापि मातृहत्यादिकं च यत्।
स्वर्णस्तेयादिकं वापि सुरापानमपीश्वर ! ॥४२१॥
गोहत्यानृतभाषित्वं क्रोधलोभावथापि वा।
परदाराभिगामित्वं परीवादः परस्य वा ॥४२२॥

---

1 १ पंक्ति क, ग, पु० अधिक पाठ।

लघुसूक्ष्मं बृहद्वापि यत्कृतं पापमुत्कटं ।
तत्सर्वं नाशमायातु पीठदानान्महेश्वर" !।।
इति मंत्रेण देवेशि! पीठं विप्राय चार्पयेत् ।।४२३।।

भैरव :—हे सुन्दरी! जौ के आटे के पांच तोलों से चौकौन पीठ बना कर उसे केसर, कपूर, चन्दन तथा कस्तूरी का लेप करना चाहिये।

हे देवों में उत्तमे! उसके चार कोणों पर चार सुवर्ण मुद्रायें तथा बीच में एक अथवा पांच चान्दी की मुद्राएँ ही रखकर, तिलक फूल से अर्चना करके ब्राह्मण को देना चाहिये। आधार शक्त्यादि मन्त्रों से पूजा करके, सफेद सुन्दर कपड़े, यज्ञोपवीत तथा दक्षिणा के लिए रुपयों से सजा कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

"मैं अपनी यात्रा सफल होने के लिये अमरेश का अक्षयपीठ अच्छे वस्त्रों से सजा कर अर्पण करता हूँ। हे मृत्युञ्जय महादेव! मैं संसार से डर कर, तुम्हारे ही स्वरूप ब्राह्मण को यह पीठ अर्पित करता हूँ। हे ब्राह्मण रूपधारी शिव! यह अमरनाथ का पीठ मेरे पापों की निवृत्ति के लिये स्वीकृत करो। जो कुछ भी मैंने भारी अथवा हल्का, गर्भघात, ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, मातृहत्या, सोने की चोरी, मदिरा पान, गो हत्या, झूट बोलना, क्रोध और लोभ, परस्त्रीसंग, दूसरों की निंदा अथवा और भी कोई छोटा बडा पाप किया हो वह इस पीठ के दान से निवृत्त हो जाय"।

हे देवेशि! यह मन्त्र पढ़कर वह पीठ ब्राह्मण को अर्पण करे।

तथा मया प्रोक्तमिदं तवानघे!।
दानं हि पीठस्य परं रहस्यम्।
ददस्व देवेशि! परं किमन्यै-
र्दानैः कलौ स्वल्पफलप्रदैश्च ।।४२४।।
इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित्।
गोपनीयं विशेषेण कलौ सिद्धिप्रदं नृणाम् ।।४२५।।
ततो[1] यायान्महाग्रामे मामलाख्ये महेश्वरि!।
महागणपतिं तत्र पूजयेद्बलिभिः प्रिये! ।।४२६।।

1. १ पंक्ति क, ग, पु० अधिक पाठ।

विविधैर्गन्धधूपैश्च मोदकैश्च महेश्वरि !।
पूपोपहारैः पुष्पैश्च पूजनीयः प्रयत्नतः ॥४२७॥
प्रसाद्य गणपं तत्र नानाबल्युपहारकैः ।
प्रायान्नवदले[1] गङ्गां यष्टिं तत्रार्पयेद्बुधः ॥४२८॥
"यष्टे ! ह्याधारभूतासि साक्षिभूतासि वै यतः ।
सत्कर्मणश्च तीर्थस्य यात्रायां ननु सुन्दरि ! ॥४२९॥
यष्टे ! विष्णुप्रियासि त्वं शिवशक्तिस्वरूपिणी ।
तस्मान्मे पापसघांश्च हित्वा याहि स्वमालयम् ॥४३०॥
गङ्गे[2] ! सदैव देवस्य शिरस्थे ! धूर्जटेः प्रिये ! ।
पुरतो देवदेवस्य यात्रां मम निवेदय" ॥४३१॥
इति मन्त्रेण देवेशि ! यष्टिं गङ्गाम्बसि क्षिपेत् ।
स्नात्वा पातालगङ्गायां ततो यायात्स्वकं गृहम् ॥४३२॥
एवं कृत्वा नु देवेशि ! नारी वा पुरुषोऽपि वा ।
वेदपारायणं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥४३३॥
यात्रां ह्येवंविधां कृत्वा पुण्यां ह्यमरनाथगां ।
मुक्तिमेव समाप्नोति विना चेन्द्रियनिग्रहैः ॥४३४॥
विनाध्यानैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्महेश्वरि ! ।
इह लोके सुखं भुंक्त्वा ह्यन्ते सायुज्यमाप्नुयात् ॥४३५॥
इति गुह्यं मया ख्यातं फलं ह्यमरनाथजं ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥४३६॥

---

1. आधुनिक कस्बा त्राल से यह स्थान तीन मील की दूरी पर त्राल से श्रीनगर जाने वाली सडक के किनारे पर स्थित है। कुछ समय पहिले यात्री अमरनाथ से लौटकर मामलेश के समीप ही एक छोटी सी पहाडी पार करके त्राल पहुँच जाते थे और वहां से नवदल जाकर श्राद्ध करते थे। इस पहाडी का कश्मीरी नाम (बुधमोर) है। आजकल तो पहलगाम से लारियों पर सीधा श्रीनगर आने के कारण यह क्रम ही लुप्तप्राय हुआ है।

2. ४ पंक्तियां ख, ग पु० अधिक पाठ।

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकनाशनः ।
श्रुतश्च पठितश्चापि हयमेधादियागदः ।।४३७।।

इति द्वादशः परिच्छेदः ।

इति शिवम् ।।

हे निष्पाप देवी ! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह रहस्यपूर्ण पीठदान का वर्णन सुनाया । हे देवी ! तुम भी यही दान में दे दो क्योंकि कलियुग में साधारण फल देने वाले दूसरे दानों से क्या प्रयोजन है ? यह अत्यन्त रहस्य प्रत्येक व्यक्ति को नहीं कहना चाहिये । इसे विशेषरूप से गुप्त रखना चाहिये क्योंकि यह कलियुग में लोगों को परम सिद्धिदायक है । हे प्यारी ! फिर मामलक नामक पवित्र ग्राम में जाकर वहां बलियों से महागणपति की पूजा करनी चाहिये । हे महेश्वरी ! गणेश जी की पूजा अनथक प्रयत्नों से भान्ति भान्ति के तिलक, धूप, लड्डू, पूडियों के उपहार और फूलों से करनी चाहिये । अनन्तर वहां पर नाना प्रकार की बलि तथा उपहारों से गणेश को मनाकर, नवदल में वर्तमान गङ्गा पर जाना चाहिये और वहां सोटी अर्पण करनी चाहिये ।

"हे दण्ड ! तू मेरे आधार बने हुए हो क्योंकि तुम प्रति समय मेरे अच्छे कर्म और तीर्थयात्रा का साक्षी हो । हे दण्ड ! तुम सृष्टिरूप होकर स्थिति और प्रलय के भी कारण हो, साथ ही विष्णु का प्रिय होकर शिवशक्ति रूप हो अतः तुम मेरे पापों का नाश करके अपने आश्रय पर चले जाओ ।"

"सदैव भगवान के सिर पर रहने वाली शंकर की प्रेयसी गङ्गा ! भगवान के सामने मेरी यात्रा का निवेदन करो ।"

हे देवेशि ! यह मन्त्र पढ़कर दण्ड को गङ्गा प्रवाह में बहा दे और पाताल गङ्गा में स्नान करके अपने घर को चला जाये । हे देवेशि ! स्त्री या पुरुष कोई भी ऐसा करने से वेदपाठ का फल निसंशय प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पवित्र अमरनाथ की यात्रा करने से इन्द्रियों

को वश में करने के विना ही मनुष्य को मुक्ति मिलती है। हे महेश्वरी ! (ऐसा करने वाला मनुष्य) ध्यान, दान तथा यज्ञ करने के विना ही इस लोक में सुख भोग अन्त में मुक्त होता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें अमरनाथ जी के दर्शन का यह रहस्यपूर्ण पटल सुना दिया इसको सुनकर मनुष्य करोडों भयङ्कर पापों से मुक्त होता है। बड़े बड़े पापों को नष्ट करने वाला यह रहस्यपूर्ण पटल सुनने से अथवा पढ़ने से ही अश्वमेध आदि यज्ञों का फल देने वाला है।

बारहवां परिच्छेद समाप्त हुआ

श्री अमरनाथ माहात्म्य समाप्त ॥

अथ अमरेश्वर पूजा प्रारभ्यते

(पानी छोडना) ओं अस्य श्री आसनशोधनमन्त्रस्य, मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसनशोधने विनयोगः। मेरुपृष्ठ ऋषये नमः शिरसे (सिर को हाथों से छूना) सुतलं छन्दसे नमः मुखे (मुंह को) कूर्मो देवतायै नमः हृदि (हृदय को) आसनशोधने विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु। (सब अङ्गों को)। (दो दर्भकाण्ड भूमी को आसन छोडना) ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवास: पर्वता इमे। ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो राजा विशामसि। (गन्ध अर्घ फूल देना) प्रीं पृथिव्यै आधारशक्त्यै समालभनं गन्धो नमः अर्घो नमः पुष्पं नमः। (हाथ जोड के मांगना) पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्। (अब अमरेश के स्मरण-पूर्वक नमस्कार करना) शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये। अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितोयः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः। कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्। सदारमन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि। गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुः साक्षान्महेश्वरः। गुरुरेव जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः। गुरवे नमः परमगुरवे

नमः परमेष्ठिने गु० परमाचार्याय नमः आद्यसिद्धेभ्यो नमः । "न्यास करना" उों अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, न तर्जनीभ्यां नमः, मः मध्यमाभ्यां नमः, शि अनामिकाभ्यां नमः, वा कनिष्ठिकाभ्यां नमः, य करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । "इति करन्यासः"। "अथ षडङ्गन्यासः" । उों हृदयाय नमः, न शिरसे स्वाहा, मः शिखायै वौषट्, शि कवचाय हुं, वा नेत्रत्रयाय वौषट्, य अस्त्राय फट् । "चारों ओर तिल फेंकना"। अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया । प्राणायामः । "मुख और पैरों को पानी से छिडकना" तीर्थे स्नेयं तीर्थमेव समानानां भवति मानः शंस्यो अररुषो धूर्तिः प्राणङ् मर्त्यस्य रक्ष नो ब्रह्मणस्पते । (पवित्र लगाने की महिमा) सप्तभिर्दर्भकुञ्जरैः कुर्याद्विप्रः पवित्रकं । षट् राज्ञा पञ्चभिर्वैश्यः स्त्रीशूद्राणां चतुष्टयम् । पकारः पापशमनः वकारः वशकारकः । त्रकारः त्राणं सर्वेषां पवित्रकमुदाहृतम् । यथा वज्रं सुरेशस्य यथा शूलं शिवस्य च । यथा विष्णोर्गदा चक्रे तथा ब्रह्मपवित्रकम् । "पवित्र धारना" वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारमयक्ष्मा वः प्रजया संसृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्ति । "अपने आपको गन्धादिक लगाना"। स्वात्मने शिवस्वरूपाय समालभनं गन्धो नमः अर्घोनमः पुष्पं नमः । "दीप को" स्वप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः । प्रसीद मम गोविन्द दीपोयं परिकल्पितः । "धूप को"। वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्धवत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोयं परिकल्पितः । "सूरजको" । नमो धर्मनिधानाय नमः स्वकृतसाक्षिणे । नमः प्रत्यक्षदेवाय भास्कराय नमोनमः । "पानी छोडना" । यत्रास्ति माता न पिता न बन्धुर्भ्रातापि नो यत्र सुहृज्जनश्च । न ज्ञायते यत्र दिनं न रात्रिस्तत्रात्मदीपं शरणं प्रपद्ये । आत्मने शिवस्वरूपाय दीपधूपसङ्कल्पात्सिद्धिरस्तु दीपोनमः धूपोनमः । उों तत्सद्ब्रह्माऽद्यतावत्तिथावऽद्य श्रावणमासस्य शुक्लपक्षस्य महापर्वणि पूर्णपञ्चदश्यां अमुकवासरान्वितायां आत्मनो वाङ्मनःकायोपार्जितपापनिवारणार्थं उोंव्वं सः अमरेश्वर प्रीत्यर्थं भवायदेवाय, शर्वायदेवाय, रुद्रायदेवाय पशुपतयेदेवाय पार्वतीसहिताय परमेश्वराय अमरेश्वराय दीपोनमः धूपोनमः। "विष्टरसहित पानी में तीन बाल फूल और गन्ध छोडना"। संव्वः सृजामि हृदयं संसृष्टं मनो अस्तु वः ॥ १ ॥ संसृष्टास्तन्वः सन्तु वः संसृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥ २ ॥ संय्यावः प्रियास्तन्वः संप्रिया हृदयानि वः । आत्मा वो अस्तु संप्रियः संप्रियास्तन्वो मम ॥ ३ ॥ "वह पानी देव पर छोडना" उों आं ह्रीं क्रीं शिवस्य

प्राणः इह प्राणः, आं ह्रीं क्रीं शिवस्य जीवः इह जीवः स्थितः। आं ह्रीं क्रीं शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रजिह्वाघ्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्त, स्वाहा। "देव को न्यास करना" ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। "पृच्छा पढना" अमृतेशाय विद्महे व्योमदेहाय धीमहि तन्नोऽमरेश्वरः प्रचोदयात्। तत्सद्ब्रह्माऽद्या-तावत्०। भवस्यदेवस्य शर्वस्यदेवस्य रुद्रस्य देवस्य पशुपतेर्देवस्य उग्रस्य देवस्य भीमस्य देवस्य महादेवस्य ईशानस्य पार्वतीसहितस्य परमेश्वरस्य अमरेश्वरपूजनं अर्चामहं करिष्ये ॐ कुरुष्व। यवान्विकीर्य। "आसन देना"। विश्वेश्वर महादेव राजराजेश्वरेश्वर। आसनं दिव्यमीशानं दास्येहं परमेश्वर। भवस्यदेवस्य० इदमासनं नमः। "आवाहन करना"। भवायदेवाय० युष्मान्वः पूजयामि ॐपूजय। भवंदेवं शर्वंदेवं रुद्रंदेवं पशुपतिंदेवं उग्रंदेवं भीमंदेवं महादेवं ईशानंदेवं पार्वतीसहितं परमेश्वरं आवाहयिष्यामि ॐमावाहय। आयाहि भगवञ्छम्भो सर्वेश गिरिजापते। प्रसन्नो भव देवेश नमस्तुभ्यं हि शंकर। लिङ्गेऽत्र भक्तदयया क्षणमात्रमेकं स्थानं विधाय भव मद्विहितां पुरारे। सर्वेश विश्वमय हृत्कमला-धिरूढः पूजां गृहाण भगवन्भव मेऽद्य तुष्टः। भूमेर्जलात्तु पवनादनलाद्धिमांशोरुष्णांशुतो हृदयतो गगनात्समेत्य। लिङ्गेऽत्र सन्मणिमये मदनुग्रहार्थं भक्त्यैकलभ्य! भगवन्कुरु सन्निधानम्। भगवन्पार्वतीनाथ! भक्तानुग्रहकारक। अस्मद्दयानुरोधेन सन्निधानं कुरु प्रभो!॥ ३॥ इत्याहूय तु गायत्रीं त्रिः समुच्चार्य तत्त्ववित्। मनसा चिन्तितैर्द्रव्यैर्देवमात्मनि पूजयेत्। तेजोरूपं ततः क्षिप्त्वा प्रतिमायां पुनर्यजेत्। प्राणायामः। पाद्यार्थं उदकं नमः। "पानी हाथसे पात्र में वापस छोडना"। शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शंय्योरभिस्रवन्तु नः। "यह द्रव्य उसमें छोडना" लाजाश्च कुङ्कुमं चैव सर्वौषधिसमन्वितम्। दर्भांकुरं जलं चैव पञ्चाङ्गं पाद्यलक्षणम्। भगवन् पाद्यं॥ २॥ महादेव महेशान महानन्द परात्पर। गृहाण पाद्यं मद्दत्तं पार्वतीसहितेश्वर। भवायदेवाय० पाद्यंनमः। "पाद्यशेष छोडना"। पुनः शन्नोदेवी०। "यह द्रव्य छोडना" आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं च दधि तण्डुलाः। यवा सिद्धार्थकाश्चेति ह्यर्घ्यमष्टाङ्गमुच्यते। भगवन् अर्घ्यं॥ २॥ त्र्यम्बकेश सदाधार विपदां प्रतिघातक। अर्घ्यं गृहाण देवेश सम्पत्सर्वार्थसाधक। भवदेव शर्वदेव रुद्रदेव पशुपते देव उग्रदेव भीमदेव महादेव ईशानदेव पार्वतीसहित परमेश्वर इदं वोऽर्घ्यं नमः। त्रिपुरान्तक दीनार्तिनाश श्रीकण्ठ तुष्टये। गृहाणाचमनं देव पवित्रोदककल्पितम्। भवायदेवाय०

आचमनीयं नमः। त्रिकालकालकालेश संहारकरणोद्यत स्नानं तीर्थाहृतैस्तोयैर्गृहाण परमेश्वर। भवाय देवाय० मन्त्रस्नानीयं नमः। पानीयान्तरितैः पयोदधिघृतैः क्षौद्रेक्षुभिः सौषधैर्व्रीह्यद्भिः कुसुमोदकैः फलजलैः सिद्धार्थलाजोदकैः। गन्धाद्भिः शुभहेमरत्नसलिलैरित्थं सदा चोत्तमैर्दद्यात्पञ्चदशाम्बुना सह महास्नानानि शम्भोः क्रमात्। असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषां सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ १ ॥ येऽस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि। तेषां सह० ॥ २ ॥ ये नीलग्रीवा शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपाश्रिताः। तेषां० ॥ ३ ॥ ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठा शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषां० ॥ ४ ॥ ये वनेषु शिल्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषां० ॥ ५ ॥ येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषां० ॥ ६ ॥ ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषां० ॥ ७ ॥ ये पथीनां पथि रक्षय ऐडमृदाश व्युधः। तेषां० ॥ ८ ॥ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः। तेषां० ॥ ६ ॥ य एतावन्तो वा भूयांसो वा दिशो रुद्रा वितिष्ठिरे। तेषां० ॥ १० ॥ ओंनमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥१॥ ओंनमो अस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवस्तेभ्यो दश० ॥२॥ ओंनमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवस्तेभ्यो० ॥३॥ भवाय देवाय० पञ्चदशस्नानानि नमः। ओंनमोदेवेभ्यः "कण्ठोपवीती" स्वाहा ऋषिभ्यः। "अपसव्येन"। स्वधा पितृभ्यः "सव्येन" आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ब्रह्माण्डं सचराचरं जगत्तृप्यतु ॥३॥ एवमस्तु। "फिर पात्रमें पानी 'ओंनमः शिवाय' इस मन्त्र से सात बार मन्त्रित करके अपने माथेतक लेकर अमृतसे भराहुआ ध्यान करके देवके सिरपर छोडना। इसको मन्त्रगुडक कहते हैं"। "आरात्रिका निकालना' गृह्णन्तु भगवद्भक्ता भूताः प्रसादबाह्मगाः। पञ्चभूताश्च ये भूतास्तेषामनुचराश्च ये। ते तृप्यन्तु वौषट्। "देवके पादोंका पानी नेत्रोंको मलना"। भगस्य हृदयं लिङ्गं लिङ्गस्य हृदयं भगः। तस्मै ते भगलिङ्गाय उमारुद्राय वै नमः। उत्तिष्ठ भगवञ्छम्भो उत्तिष्ठ गिरिजायते। उत्तिष्ठ त्रिजगन्नाथ त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु। "शम्भू बिठाने की जगह पर फूल छोडते हुए पढना" आसनाय नमः पद्मासनाय नमः। वृषभासनाय नमः ज्ञानासनाय नमः। किमासनं ते वृषभासनाय किंभूषणं वासुकिभूषणाय। वित्तेशभृत्याय किमस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयमस्ति। "महिम्नः पारस्तोत्र पढते हुए

देवको चन्दनादिद्रव्यों से अनुलेपन करना"। "वस्त्र पहनना"। कालाग्निरुद्र सर्वज्ञ वरदाभयदायक। वस्त्रं गृहाण देवेश दिव्यवस्त्रोपशोभित। भवाय देवाय० वस्त्रं परिकल्पयामि नमः। "जनू पहनना"। सुवर्णतारैरचितं दिव्ययज्ञोपवीतकम्। नीलकण्ठ मया दत्तं गृहाण परमेश्वर। भवाय दे० यज्ञोपवीतं परिकल्पयामि नमः। "गन्ध चडाना"। सर्वेश्वर जगद्वन्द्य दिव्यासनसुसंस्थित। गन्धं गृहाण देवेश दिव्यगन्धोपशोभितम्। भवाय० समालभनं गन्धो नमः। "अक्षत और फूल चडाना"। सदाशिव शिवानन्द प्रधानकरणेश्वर। पुष्पाणि बिल्वपत्राणि विचित्राणि गृहाण मे। भवाय दे०। अनन्ताय नमः। सूक्ष्माय शिवोत्तमाय एकनेत्राय एकरुद्राय त्रिमूर्तये श्रीकण्ठाय शिखण्डिने नन्दिने महाकालाय नमः। अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्। गणपतये नमः वृषभाय कुमाराय अम्बिकायै चण्डेश्वराय नमः। अभीष्ट० द्वितीयावर०। इन्द्राय वज्रहस्ताय अग्नये शक्तिहस्ताय यमाय दण्डहस्ताय नैर्ऋतये खड्गहस्ताय वरुणाय पाशहस्ताय वायवे ध्वजहस्ताय कुबेराय गदाहस्ताय ईशानाय त्रिशूलहस्ताय ब्रह्मणे पद्महस्ताय विष्णवे चक्रहस्ताय नमः। अभीष्ट० तृतीयाव०। जयायै नमः विजयायै सुभगायै दुर्भगायै जयन्त्यै कुह्न्यै अपराजितायै कराल्यै नमः। अभिष्टसि० चतुर्था०। सूर्याय नमः चन्द्रमसे भौमाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनैश्चराय राहवे केतवे। अभिष्ट० पञ्चमा०। अनन्तनागराजाय नमः वासुकिनाग० तक्षकना० पद्म० महापद्म० कार्कोट० शङ्खपाल० कुलिक०। अभीष्ट० षष्ठमाव०। वज्राय फट् नमः शक्तये फ० दण्डाय० खड्गाय० पाशाय० ध्वजाय० गदायै० त्रिशूलाय० पद्माय० चक्राय फट्नमः। अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल। भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चदम्। शिवाय अमृतेश्वराय सपरिवाराय सानुचराय अर्घो नमः पुष्पं नमः। "धूप चडाना"। महादेव मृडानीश जगदीश निरञ्जन। धूपं गृहाण देवेश सज्यं गुग्गुलुकल्पितम्। भवाय धूपं परिकल्पयामि नमः। "रत्नदीप चडाना"। हिरण्यबाहो सेनानीरोषधीनां पते शिव। दीपं गृहाण कर्पूरकपिलाज्यत्रिवर्तिकम्। भवाय० रत्नदीपं परिकल्पयामि नमः। मयूरपुच्छैर्देवेश शुभ्रैश्चामरकैस्तथा। ध्वजं छत्रं वीजनं च गृहाण परमेश्वर। "चामर करना"। जय सर्वजनाधीश जय गौरीपते शिव। जय देव महादेव जयगङ्गाधरेश्वर। जय दग्धपुराध्यक्ष जय कालान्तकारक। जय काम-

विरामेश जय भक्तानुकम्पक। जय त्रैलोक्यसंरक्षिन् जय निर्गुण सद्गुण। जयानन्तगुणारम्भ जय घोर महेश्वर। जय चन्द्रकलाकान्त जय नागेन्द्रभूषण। जय पुङ्गवसत्केतो जय त्र्यक्ष महेश्वर। जयान्तकरिपो शम्भो जय ब्रह्मादिकारण। जय पञ्चकलातीत जय शूलिन्कपालभृत्। जयोपेन्द्रचन्द्राद्य जय नन्द्यादिवन्दित। जयानेकगणाधीश जय स्वामिन् महेश्वर। जय विश्वाद्य विश्वेश जय विश्वैककारण। जय विश्वसृजां मुख्य जय विश्वस्य सद्गुरो। जय निरामय जय सुधामय जय धृतामृतदीधिते, जय हतान्तक जय कृतान्तक जय पुरान्तक सद्गते। जय परापर जय दयापर जय नतार्पितसद्गते जय जितस्मर जय महेश्वर जय जय त्रिजगत्पते। इति जयस्तुतिः। व्याप्तचराचरभावविशेषं चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्। भैरवनाथमनाथशरण्यं त्वन्मयचित्ततया हृदि वन्दे ॥१॥ त्वन्मयमेतदशेषमिदानीं भाति मम त्वदनुग्रहशक्त्या। त्वं च महेश सदैव ममात्मा स्वात्ममयं मम तेन समस्तम् ॥२॥ स्वात्मनि विश्वगते त्वयि नाथे तेन न संसृतिभीतिकथास्ति। सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोहत्रासविधायिषु कर्मगणेषु ॥३॥ अन्तक मां प्रति मा दृशमेनां क्रोधकरालतमां विदधीहि। शङ्करसेवनचिन्तनधीरो भीषणभैरवशक्तिमयोऽस्मि ॥४॥ इत्थमुपोढभवन्मयसंविद्दीधितिदारितभूरितमिस्रः। मृत्यु यमान्तक कर्म पिशाचैर्नाथ नमोऽस्तु न जातु बिभेमि ॥५॥ प्रोदितसत्यविबोधमरीचिप्रोक्षितविश्वपदार्थसतत्त्वः। भावपरामृतनिर्भरपूर्णे त्वय्यहमात्मनि निर्वृतिमेमि ॥६॥ मानसगोचरमेति यदैव क्लेशदशाऽतनुतापविधात्री। नाथ! तदैव मम त्वदभेदस्तोत्रपरामृतवृष्टिरुदेति ॥७॥ शंकर सत्यमिदं व्रतदानस्नानतपो भवतापविनाश। तावकशास्त्रपरामृतचिन्ता स्यन्दति चेतसि निर्वृतिधाराः ॥८॥ नृत्यति गायति हृष्यति गाढं संविदियं मम भैरवनाथ। त्वां प्रियमाप्य सुदर्शनमेकं दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम् ॥९॥ वसुरसपौषे कृष्णदशम्यामभिनवगुप्तः स्तवमिममकरोत्। येन विभुर्भवमरुसन्तापं शमयति झटिति जनस्य दयालुः ॥१०॥ इत्यऽभिनवोक्तभैरवस्तुतिः। अतिभीषणकटुभाषणयमकिंकरपटलीकृतताडनपरिपीडनमरणागमसमये। उमया सह मम चेतसि यमशासन निवसन्शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥१॥ अतिदुर्नयचटुलेन्द्रियरिपुसञ्चयदलिते पविकर्कशकटुजल्पितखलगर्हणचलिते। शिवया सह मम चेतसि शशिशेखर निवसञ्छिव० ॥२॥ भवभञ्जन सुररञ्जन खलवञ्चन पुरहन् दनुजान्तक मदनान्तक रविजान्तक भगवन्। गिरिजावर करुणाकर परमेश्वर भयहञ्छिव

श० ।।३।। शक्रशासन कृतशासन चतुराश्रमविषये कलिविग्रह भवदुर्ग्रह रिपुदुर्बलसमये । द्विजक्षत्रियवनिताशिशुदरकम्पितहृदये शिव० ।।४।। भवसंभवविविधामयपरिपीडितवपुषं दयितात्मजममताभरकलुषीकृतहृदयम् । कुरु मां निजचरणार्चननिरतं भव सततं शिव० भवाय० चामरं परिकल्पयामि नमः । नवरत्नमयंदिव्यं मुक्ताहारविभूषितम् । गृहाण छत्रं भगवंश्चित्रभद्रासनमिदम् । भवाय० छत्रं प० । "आईना दिखाना" । यस्य दर्शनमात्रेण विश्वं दर्पणबिम्बवत् । तस्मै ते परमेशाय मुकुरं कल्पयाम्याहम् । भवाय० आदर्शं परिकल्पयामि नमः । एताभ्यो देवताभ्यः दीपो नमः धूपो नमः । वासोनमः । क्षेमप्रदायकंसर्वक्षेत्रसारस्वतप्रदम् । गृहाण क्षौमवस्त्रं त्वं महेश करुणानिधे । अमरेश्वरस्य सानुचरस्याऽर्घ्यदानाद्यऽर्चनविधिः सर्वः परिपूर्णोस्तु । "मधुपर्क देना" । क्षीराज्यमधुसंमिश्रं शुभ्रदध्ना समन्वितम् । षड्रसैश्च समायुक्तं गृहाणान्नं निवेदये । भवाय० चरुं परिकल्पयामि नमः । "फूलोंकी अञ्जली चडाना" । हर विश्वाखिलाधार निराधार निराश्रय । पुष्पाञ्जलिमिमं शम्भो गृहाण वरदो भव । भवाय० पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नमः । "फल चडाना" । राजराजाधिदेवेश निराधार निरास्पद । फलं गृहाण मद्दत्तं नारिकेलादिकं शुभम् । भवाय फलं समर्पयामि नमः । "ताम्बूल चडाना" । शाश्वतात्मन्महानन्द मदनान्तक धूर्जटे । गृहाण पूगताम्बूलदलपत्रादिसंयुतम् । भवाय० ताम्बूलं परि० । "आधा प्रक्रम देना" । यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति शिवस्यार्धप्रदक्षिणात् । "षडक्षरपञ्चाक्षर स्तोत्र पढकर अष्टाङ्ग प्रणाम देना" । मृडानीशाद्य मे सर्वानपराधानऽनेकशः । क्षम स्वामिन्प्रणामं मे गृहाणाष्टाङ्गसंयुतम् । उभाभ्यां जानुभ्यां पाणिभ्यां शिरसा उरसा मनसा वचसा च नमस्कारं करोमि नमः । अन्नं नमः २ आज्यं २ अद्यदिनेऽद्ययथासङ्कल्पात्सिद्धिरस्तु अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं द्रव्यहीनं मन्त्रहीनं च यद्गतं तत्सर्वमऽच्छिद्रं सम्पूर्णमस्तु एवमस्तु । शन्नो देवी० भवाय० अपोशानं नमः । पुनः शन्नो देवी० भवाय० दक्षिणायै तिलहिरण्यरजतनिष्कर्णं ददानि । एता देवताः सदक्षिणान्नेन प्रीयन्तां प्रीताः सन्तु । "नैवेद्य देना" । अमृतेशमुद्रयाऽमृतीकृत्याऽमृतमस्तु अमृतायतां नैवेद्यं सावित्राणि सावित्रस्य दवस्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामादधे । भवाय० वासुदेवादिभ्यो विष्णुपञ्चायतन देवताभ्यः इन्द्रादिभ्यो दशलोकपालेभ्यः आदित्यादिभ्य एकादशग्रहेभ्यः कुलनागदे० पञ्चचत्वारिंशा-

विरामेश जय भक्तानुकम्पक। जय त्रैलोक्यसंरक्षिन् जय निर्गुण सद्गुण। जयानन्तगुणारम्भ जय घोर महेश्वर। जय चन्द्रकलाकान्त जय नागेन्द्रभूषण। जय पुङ्गवसत्केतो जय त्र्यक्ष महेश्वर। जयान्तकरिपो शम्भो जय ब्रह्मादिकारण। जय पञ्चकलातीत जय शूलिन्कपालभृत्। जयोपेन्द्रचन्द्राद्य जय नन्द्यादिवन्दित। जयानेकगणाधीश जय स्वामिन् महेश्वर। जय विश्वाद्य विश्वेश जय विश्वैककारण। जय विश्वसृजां मुख्य जय विश्वस्य सद्गुरो। जय निरामय जय सुधामय जय धृतामृतदीधिते, जय हतान्तक जय कृतान्तक जय पुरान्तक सद्गते। जय परापर जय दयापर जय नतार्पितसद्गते जय जितस्मर जय महेश्वर जय जय त्रिजगत्पते। इति जयस्तुतिः। व्याप्तचराचरभावविशेषं चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्। भैरवनाथमनाथशरण्यं त्वन्मयचित्ततया हृदि वन्दे ॥१॥ त्वन्मयमेतदशेषमिदानीं भाति मम त्वदनुग्रहशक्त्या। त्वं च महेश सदैव ममात्मा स्वात्ममयं मम तेन समस्तम् ॥२॥ स्वात्मनि विश्वगते त्वयि नाथे तेन न संसृतिभीतिकथास्ति। सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोहत्रासविधायिषु कर्मगणेषु ॥३॥ अन्तक मां प्रति मा दृशमेनां क्रोधकरालतमां विदधीहि। शङ्करसेवनचिन्तनधीरो भीषणभैरवशक्तिमयोऽस्मि ॥४॥ इत्थमुपोढभवन्मयसंविद्दीधितिधारितभूरितमिस्रः। मृत्यु यमान्तक कर्म पिशाचैर्नाथ नमोऽस्तु न जातु बिभेमि ॥५॥ प्रोदितसत्यविबोधमरीचिप्रोक्षितविश्वपदार्थसतत्त्वः। भावपरामृतनिर्भरपूर्णे त्वय्यहमात्मनि निर्वृतिमेमि ॥६॥ मानसगोचरमेति यदैव क्लेशदशाऽतनुतापविधात्री। नाथ ! तदैव मम त्वद्भेदस्तोत्रपरामृतवृष्टिरुदेति ॥७॥ शंकर सत्यमिदं व्रतदानस्नानतपो भवतापविनाश। तावकशास्त्रपरामृतचिन्ता स्यन्दति चेतसि निर्वृतिधाराः ॥८॥ नृत्यति गायति हृष्यति गाढं संविदियं मम भैरवनाथ। त्वां प्रियमाप्य सुदर्शनमेकं दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम् ॥९॥ वसुरसपौषे कृष्णदशम्यामभिनवगुप्तः स्तवमिमकरोत्। येन विभुर्भवमरुसन्तापं शमयति झटिति जनस्य दयालुः ॥१०॥ इत्यऽभिनवोक्तभैरवस्तुतिः। अतिभीषणकटुभाषणयमकिंकरपटलीकृतताडनपरिपीडनमरणागमसमये। उमया सह मम चेतसि यमशासन निवसन्शिव शंकर शिव शंकर हर मे हर दुरितम् ॥१॥ अतिदुर्नयचटुलेन्द्रियरिपुसञ्चयदलिते परिकर्कशकटुजल्पितखलगर्हणचलिते। शिवया सह मम चेतसि शशिशेखर निवसञ्शिव० ॥२॥ भवभञ्जन सुररञ्जन खलवञ्चन पुरहन् दनुजान्तक मदनान्तक रविजान्तक भगवन्। गिरिजावर करुणाकर परमेश्वर भयहञ्शिव

श० ॥३॥ शक्रशासन कृतशासन चतुराश्रमविषये कलिविग्रह भवदुर्ग्रह रिपुदुर्बलसमये । द्विजक्षत्रियवनिताशिशुदरकम्पितहृदये शिव० ॥४॥ भवसंभवविविधामयपरिपीडितवपुषं दयितात्मजममताभरकलुषीकृतहृदयम् । कुरु मां निजचरणार्चननिरतं भव सततं शिव० भवाय० चामरं परिकल्पयामि नमः । नवरत्नमयंदिव्यं मुक्ताहारविभूषितम् । गृहाण छत्रं भगवंश्चित्रभद्रासनमिदम् । भवाय० छत्रं प० । "आईना दिखाना" । यस्य दर्शनमात्रेण विश्वं दर्पणबिम्बवत् । तस्मै ते परमेशाय मुकुरं कल्पयाम्याहम् । भवाय० आदर्शं परिकल्पयामि नमः । एताभ्यो देवताभ्यः दीपो नमः धूपो नमः । वासोनमः । क्षेमप्रदायकंसर्वक्षेत्रसारस्वतप्रदम् । गृहाण क्षौमवस्त्रं त्वं महेश करुणानिधे । अमरेश्वरस्य सानुचरस्याऽर्घ्यदानाद्यऽर्चनविधिः सर्वः परिपूर्णोस्तु । "मधुपर्क देना" । क्षीराज्यमधुसंमिश्रं शुभ्रदध्ना समन्विम् । षड्रसैश्च समायुक्तं गृहाणान्नं निवेदये । भवाय० चरुं परिकल्पयामि नमः । "फूलोंकी अञ्जली चडाना" । हर विश्वाखिलाधार निराधार निराश्रय । पुष्पाञ्जलिमिमं शम्भो गृहाण वरदो भव । भवाय० पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नमः । "फल चडाना" । राजराजाधिदेवेश निराधार निरास्पद । फलं गृहाण मद्दत्तं नारिकेलादिकं शुभम् । भवाय फलं समर्पयामि नमः । "ताम्बूल चडाना" । शाश्वतात्मन्महानन्द मदनान्तक धूर्जटे । गृहाण पूगतास्थूलदलपत्रादिसंयुतम् । भवाय० ताम्बूलं परि० । "आधा प्रक्रम देना" । यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानिच । तानि सर्वाणि नश्यन्ति शिवस्यार्धप्रदक्षिणात् । "षडक्षरपञ्चाक्षर स्तोत्र पढकर अष्टाङ्ग प्रणाम देना" । मृडानीशाद्य मे सर्वानपराधानऽनेकशः । क्षम स्वामिन्प्रणामं मे गृहाणाष्टाङ्गसंयुतम् । उभाभ्यां जानुभ्यां पाणिभ्यां शिरसा उरसा मनसा वचसा च नमस्कारं करोमि नमः । अन्नं नमः २ आज्यं २ अद्यदिनेऽद्ययथासङ्कल्पात्सिद्धिरस्तु अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं द्रव्यहीनं मन्त्रहीनं च यद्गतं तत्सर्वमऽच्छिद्रं सम्पूर्णमस्तु एवमस्तु । शन्नो देवी० भवाय० अपोशानं नमः । पुनः शन्नो देवी० भवाय० दक्षिणायै तिलहिरण्यरजतनिष्कर्णं ददानि । एता देवताः सदक्षिणान्नेन प्रीयन्तां प्रीताः सन्तु । "नैवेद्य देना" । अमृतेशमुद्रयाऽमृतीकृत्याऽमृतमस्तु अमृतायतां नैवेद्यं सावित्राणि सावित्रस्य दवस्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामादधे । भवाय० वासुदेवादिभ्यो विष्णुपञ्चायतन देवताभ्यः इन्द्रादिभ्यो दशलोकपालेभ्यः आदित्यादिभ्य एकादशग्रहेभ्यः कुलनागदे० पञ्चचत्वारिंद्दा-

स्तोष्पति यागदेवताभ्यः धूर्भ्यः उपधूर्भ्यः महागायत्र्यै, सावित्र्यै, सरस्वत्यै हेरुकादिभ्यो वटुकादिभ्यः हर शम्भो महादेव विश्वेशामरवल्लभ ! शिव शंकर सर्वात्मन्नीलकण्ठ ! नमोऽस्तुते। तत्सद्ब्रह्म० नमो नैवेद्यं निवेदयामि नमः। आकाशमातृभ्यो बलिं नमः समालभनं गन्धो नमः। अर्घो नमः। पुष्पं नमः। कर्पूरगौरं० भवाय० फलादि समर्पयामि नमः। क्षां क्षेत्राधिपतयेऽन्नं नमः रां राष्ट्राधिपतयेऽन्नं नमः। सर्वाभयवरप्रदाः मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु। "नित्यकर्म करके पृच्छा करना"। अमृतेशाय विद्महे व्योमदेहाय धीमहि तन्नोऽमरेश्वरः प्रचोदयात् ३। ओं तत्सद्ब्रह्माऽद्य तावत्० भवत्य देवस्य० अच्छिद्रं सम्पूर्णमस्तु एवमस्तु। एताभ्यो देवताभ्यो यवोदकं नमः उदकतर्पणं नमः। आपन्नोस्मि शरण्योसि सर्वाऽवस्थासु सर्वदा। भगवंस्त्वां प्रपन्नोस्मि रक्ष मां शरणागतम्। "क्षमापण पढना"। नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय। देवाधिदेवाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमःशिवाय॥१॥ मातङ्गचर्माम्बरभूषणाय समस्तगीर्वाणगणार्चिताय। त्रैलोक्यनाथाय पुरान्तकाय तस्मै मकारा०॥२॥ शिवामुखाम्भोजविकासनाय दक्षस्य यज्ञस्य विनाशकाय। चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै शिकारा०॥३॥ वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमादिमुनीन्द्रवन्द्याय गिरीश्वराय। श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै वकारा०॥४॥ यज्ञस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय। नित्याय शुद्धाय निरञ्जनाय तस्मै यकाराय०॥५॥ इति। ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव ओंकारं तं नमाम्यहम्॥१॥ न जातो न मृतो यश्च क्षयो यस्य न विद्यते। नमन्ति दैवताः सर्वे नकारं तं०॥२॥ महादेवं महावक्त्रं महाध्यानपरायणम्। महापापहरं देवं मकारं तं०॥३॥ शिवात्परतरो नास्ति शिवशास्त्रेषु निश्चयः। शमन्ति सर्वपापानि शिकारं०॥४॥ वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कण्ठभूषणम्। वामे शक्तिधरं देवं वकारं तं०॥५॥ यत्र तत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः। यो गुरुः सर्वदेवानां यकारं तं०॥६॥ ओंकारं कर्मचक्रेषु नकारं नाभिमण्डले। मकारं हृदये देशे शकारं कण्ठभूषणम्। वकारं वक्त्रमध्ये तु यकारं ब्रह्मरन्ध्रगम्। एवं षडक्षरस्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ। शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥ इति पञ्चाक्षरषडक्षरशिवस्तुतिः।

जयत्यनन्यसामान्यप्रकृष्टगुणवैभवः। संसारनाटकारम्भनिर्वाहनकविः शिवः। ओंनमः शिवाय भूतभव्यभाविभावभाविने। ओंनमःशिवाय मातृमान-

मेयकल्पनाजुषे । ॐनमः० भीमकान्तशान्तशक्तिशालिने । ॐ०शाश्वताय शङ्कराय शम्भवे । ॐ० निर्निकेतनिःस्वभावमूर्त्तये । ॐ०निर्विकल्पनिष्प्रपञ्चसंविदे । ॐ० निर्विवादनिष्प्रमाणसिद्धये । ॐ० निर्मलाय निष्कलाय वेधसे । ॐ० पार्थिवाय गन्धमात्रसंविदे । ॐ० षड्रसाद्यसाम्यरस्यतृप्तये ॥१०॥ ॐ० तैजसाय रूपितानिरूपिणे । ॐ०पावनाय सर्वभावसंस्पृशे । ॐ० नाभसाय शब्दमात्रराविणे । ॐ० निर्गलन्मलव्यपायि पायवे । ॐ०विश्वसृष्टिसौष्ठवैकमेधसे । ॐ०सर्वतः प्रसारिपादसम्पदे । ॐ० विश्वभोग्यभोगयोग्यपाणये । ॐ० वाचकप्रपञ्चवाच्यवाचिने । ॐ० नस्यगन्धसर्वगन्धबन्धवे । ॐ० पुद्गलालिलोलकाग्रशालिने ॥२०॥ ॐ०-चाक्षुषाय विश्वरूपसन्दृशे । ॐ० तद्गुणत्रयविभागभूतये । ॐ० पौरुषाय भोक्तृदाय मानिने । ॐ० सर्वतो नियन्तृतानियामिने । ॐ० कामभेदकल्पनोपकल्पिने । ॐ० किञ्चिदेव वत्सताकरासृजे । ॐ० किञ्चिदेव वेत्तृतोपपादिने । ॐ० सर्वभोग्यवर्धनोपरागिणे । ॐ० शुद्धविद्यतत्त्वमन्त्ररूपिणे । ॐ० दृक्त्वयाविकस्वरेशात्मने ।३०। ॐ० सर्ववित्प्रभो सदाशिवाय ते । ॐ० वाच्यवाचकादिषट्कभित्तये । ॐ० वर्णमंत्रसत्पदोपपादिने । ॐ पञ्चधा कलाप्रपञ्चपञ्चिने । ॐ०सौरजैनबौद्धशुद्धभागिने । ॐ०भक्तिमात्रलभ्यदर्शनाय ते । ॐ०सर्वतो गरीयसां गरीयसे । ॐ० सर्वतो महीयसां महीयसे । ॐ०सर्वतः स्थवीयसां स्थवीयसे । ॐ०तुभ्यमस्त्वणीयसामणीयसे ॥४०॥ ॐ०मन्दराद्रिकन्दराधिशायिने । ॐ० जाह्नवीजलोज्ज्वलाभजूटिने । ॐ भालचन्द्रचन्द्रिकाकिरीटिने । ॐ०सोमसूर्यवह्निमात्रनेत्र ते । ॐ०कालकूटकण्ठपीठसुश्रिये । ॐ० धर्मरूपपुङ्गवध्वजाय ते । ॐ०भस्मधूलिशालिने त्रिशूलिने । ॐ०सर्वलोकपालिने कपालिने । ॐ० सर्वदैत्यमर्दिने कपर्दिने । ॐ० नित्यनम्रनाकिने पिनाकिने ॥५०॥ ॐ० नागराजहारिणे विहारिणे । ॐ० शैलजाविलासिने सुखासिने । ॐ० मन्मथप्रमाथिने पुरुषे । ॐ०कालदेहदाहयुक्तिकारिणे । ॐ० नागकृत्तिवाससेऽप्यऽवाससे । ॐ०भीषणश्मशानभूमिवासिने । ॐ पीठशक्तिपीठकोपपादिने । ॐ०सिद्धमन्त्रयोगिने वियोगिने । ॐ०सर्वदृक्चतुर्नयादिकारिणे । ॐ० सर्वतीर्थतीर्थताविधायिने ।६०। ॐ०साङ्गवेदतद्विचारचारवे । ॐ० षट्पदार्थषोडशार्थवादिने । ॐ० सांख्ययोगपाञ्चरात्रपञ्चिने । ॐ० धातृविष्णुशर्वकादिरूपिणे । ॐ० धातृविष्णु प्रमुखात्मरूपिणे । ॐ० भोग्यदाय भोग्यभोगरूपिणे । ॐ०पारगाय पारणाय मन्त्रिणे । ॐ०पारमार्थपार्थिवस्वरूपिणे । ॐ० सर्वमण्डलाधिपत्यशालिने । ॐ०सर्वशक्तिवासनानिवासिने ॥७०॥ ॐ०

सर्वतन्त्रवासनारसात्मने। ॐ० सर्वमन्त्रदेवतानियोगिने। ॐ० स्वस्थिताय नित्यकर्ममालिने। ॐ० कालकल्पकल्पिने सुतल्पिने। ॐ० भक्तकाय सौख्यदाय शम्भवे। ॐ० भूर्भुवःस्वरात्मलक्ष्यलक्षिणे। ॐ० शून्यभावशान्तरूपधारिणे। ॐ०सर्वभावशुद्धबुद्धिहेतवे। ॐ०सर्वसिद्धदायिने सुमायिने। ॐ०भक्तिमात्रसंस्तुताय शूलिने ॥८०॥ ॐनमः शिवाय भास्वते। ॐ०भर्ग ते। ॐ०शर्व ते। ॐ०गर्व ते। ॐ०खर्व ते। ॐ०पर्व ते। ॐ०रुद्र ते। ॐ०भीम ते। ॐ० विष्णवे। ॐ०जिष्णवे ।६०। ॐ०धन्विने। ॐ०खड्गिणे। ॐ०चर्मिणे। ॐ०वर्मिणे। ॐ० कर्मिणे। ॐ०धर्मिणे। ॐ०भामिने। ॐ०कामिने। ॐ०योगिने। ॐ०भोगिने। ॐ०तिष्ठते। ॐ गच्छते। ॐ०हेतवे। ॐ०सेतवे। ॐ०सर्वतः। ॐ०सर्वशः। ॐ०सर्वदा। ॐ०सर्वथः ॥१०८॥ भव शर्व रुद्रहर शंकर भूतपते गिरिश भर्ग शशिशेखर नीलगल। त्रिनयन वामदेव गिरिजाधव माररिपो जयजय देवदेव भगवन्भवतेऽस्तु नमः। एतामष्टोत्तरशतनमस्कारसंस्कारपूतां भूतार्थव्याहृतिनुतिमुदाहृत्य मृत्युञ्जयस्य। कश्चिद्विद्वान्यदिह कुशलं सञ्चिनोति स्म किञ्चित्तेनान्येषां भवति पठतामीप्सितार्थस्य सिद्धिः॥ आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्। पूजाभागं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर। उभाभ्यामिति अष्टाङ्गप्रणामं करोमि नमः। "तर्पण करना" नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम औषधीभ्यः नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहते कृणोमि। इत्येतासामेव देवतानां सलोकतां सायुज्यं सार्ष्टिं सामीप्यमाप्नोति य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते। पूजितोसि मया भक्त्या भगवन्गिरिजापते। सगौरीको मम स्वान्तं विश विश्रान्तिहेतवे। मनस्यान्तर्गतं मन्त्रं मन्त्रस्यान्तर्गतं मनः। मनोमन्त्रमयं दिव्यमेकपुष्पं शिवार्चनम्॥

पुष्पाणि सन्तु तव देव! ममेन्द्रियाणि
धूपो गुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः!।
प्राणाः हवींषि करणानि तवाक्षतास्ते
पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः।
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं
न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां
त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गः।

जन्मानि संतु मम देव! शताधिकानि
माया च मे विशतु चित्तमबोधहेतुः।
किञ्च क्षणार्धमपि त्वच्चरणारबिन्दा-
न्नापैतु मे हृदयमीश! नमो नमस्ते॥

इति अमरेश्वर पूजा सम्पूर्णा

अथ नवदल श्राद्धविधिः

भाद्रदि चतुर्थ्यां नवदलश्राद्धं कुर्यात्।

ब्रह्मकलशे प्रधानं। असंख्याता० १० ऋचा यो रुद्रो०। भवाय देवाय० तद्विष्णोः, पंचायतन देवताभ्यो नमः। क्षेत्रेशौ हेरुकः वटुकः। 'यजमानमानीय' तीर्थस्नेयं० धूपदीपौ०। भवाय देवाय० विष्णुपंचायतनदेवताभ्यः अमरनाथयात्रासाफल्यार्थं समस्तपितॄणां मुक्तिप्राप्त्यर्थं नवदलश्राद्ध निमित्तं धूपो नमः दीपो नमः। गायत्र्यै नमः ३ तत्पुरुषायविद्महे। व्योमदेहाय धीमहि। तन्नोऽमरेश्वरः प्रचोदयात् ३ तत्सत्० भवस्य देवस्य विष्णुपञ्चायतन देवतानां श्रीअमरनाथयात्रासाफल्यार्थं समस्तपितॄणां मुक्तिप्राप्त्यर्थं नवदल श्राद्धनिमित्तं कलश पू० अर्चामहं करिष्ये ॐ कुरुष्व। दक्षिणान्तं कुर्यात्। ततोऽग्निकर्म, यवचरुणा। (अवसरानुसारं अन्नचरुणा अपि श्राद्धं कुर्यात्)। पात्रं तिला०। परिसमूह्य०। पुरस्ता०। वैश्वदेवस्य सिद्धस्य०। पूर्वाग्रान्दर्भानास्तीर्य। तत्वादिभ्यो बलिः। (अपसव्येन) समस्तमाता० अन्नंस्वधा० हिमं हिमं रजतं रजतम्। (सव्येन) वसन्ताय०। भगवन् यक्ष्म०। (कण्ठोपवीती) सनकादयः। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। विमुञ्चामि०। नयामि० (ततः श्राद्धम्) आचम्य गायत्र्यै नमः ३ तत्पुरुषाय० ३। (अपसव्येन) अद्यतावत्० समस्तमातापितॄणां द्वादशदैवतानां, तेषां परलोके मुक्तिप्राप्त्यर्थं अमरनाथयात्रा साफल्यार्थं नवदलश्राद्धनिमित्तं अर्चामहं करिष्ये। ॐ कुरुष्व (तिलान्विकीर्य) समस्त० आसनम्। समस्त० ब्राह्मणं त्वां पूजयामि। ॐ पूजय। निहन्मि०। सव्येन। (विश्वेदेवौ ध्वनिरुचकनामानौ पूजनीयौ)। विश्वेदेवानां ध्वनिरुचकयोः आसनं०। विश्वेभ्यो देवेभ्यो ध्वनिरुचकाभ्यां ब्राह्मणं त्वां पूजयामि। ॐ० पूजय। पाद्यार्घ्यगन्धपुष्पादि। आपः प्रदाय०। (अपसव्येन) समस्तमाता० इदमासनं स्वधा। समस्तमाता० ब्राह्मणं त्वां पूजयामि ॐ पूजय। श्राद्धानु-

वाकौ०। यास्तिष्ठन्ति० ३ समस्त पाद्यं स्वधा। (आचम्य)। यास्तिष्ठन्ति ६। समस्त० अर्घ्यं स्वधा। गन्धः स्वधा (आचम्य) अर्घपुष्पधूपदीपयासांसिस्वधा। (सव्येन) शुन्द्धतां लोकाः०। (अपसव्येन) पितृषदनं०। (सव्येन) इदमन्नं० इदं० देवेभ्यः श्रृतमभिघार्य। (अपसव्येन) इदमन्नं पितृभ्यः श्रृतमभिघार्य मेत्तणं न भवति। अग्नौ करवाणि० पात्रेषु निक्षिपेत्० (सव्येन) विश्वेभ्यो देवेभ्यः अन्नं नमः०। अन्नमधुमधू, नमो देवेभ्यः०। (अपसव्येन) समस्त० अन्नं स्वधा० अन्नमधुमधू। अद्य दिने०। (सव्येन) विश्वेभ्यो देवेभ्यः अपोशानं० (अपसव्येन) यास्तिष्ठन्ति० समस्त० अपोशानं० तिलमन्नं०। ब्रह्मार्पणं। यास्तिष्ठन्ति० समस्त अवनीजनं० तिलास्तोयं०। (पिंडदानम्) समस्तमाता० पिंडदानं कुर्यात्। मूलपुरुषाः ये लुप्तपिंडाः पितरोऽस्मदीयाः गर्भादिनष्टा जलभूमिमग्नाः। ते तृप्तिभाजः पररूपयुक्ताः पापैर्विमुक्तास्त्रिदिवं प्रयान्तु। आमगर्भेभ्यो लुप्तपिण्डेभ्यः अपः उपस्पृश्य। समस्त० वासोवीरान्नगन्ध पुष्पधूपदीपभक्षभोज्य हिमपानादि स्वधा। (सव्येनाचम्य) वसन्ताय०। (अपसव्येन) ऊर्जं वहन्ति०। (सव्येन) मा मे क्षेष्ठा०। नैवेद्यं०। (अपसव्येन) सर्वमन्नं०। (सव्येन) असोमपाः०। (अपसव्येन) आचम्य। समस्त० आचमनी०। (सव्येन) विश्वेभ्यो देवेभ्यः आचमनी। (अपसव्येन) यन्मे रामाः०। समस्त० दक्षिणा। (सव्येन) धातारौ० विश्वेभ्यो दे० दक्षिणा। शन्नो भवन्तु०। वाजे वाजे०। आमा वाजस्य०। (सव्येन) गायत्र्यै नमः ३ तत्पु० (अपसव्येन) समस्त० अच्छिद्रं०। (नदीजले अवतरेत्) समस्त० तिलोदकं० ततो गोग्रासादि० आयु प्रजां०। कलशस्याच्छिद्रं०। पात्राणि० आचम्य उदकलशं०। इति नवदल श्राद्धविधिः।

अथ तृणपादुकादानमन्त्रः—

पदे पदे साक्षिभूत तृणपाद मुनिप्रिय!।
त्वं गत्वा प्रेतलोकेषु पाददाहं निवारय॥

उपानत् (जूता)

उपानहं प्रदास्यामि शिलाकण्टकरक्षणं।
पादसंरक्षणार्थं हि गृहाण त्वं सुखाय च॥

यष्टिः (दण्ड)

दधीचिकीकसाज्जाता यष्टिरेषा शुभावहा।

अचला विषमा यत्र तत्र मेऽस्तु सुखप्रदा।
यष्टिर्दण्डं मया दत्तं विप्रहस्ते जनार्दन
ब्रह्मरुद्रादयो देवा दाने प्रीतास्तु मे सदा।
दिवाकरसुतो मेऽस्तु किङ्करैः सह संसदि
दण्डदानात् प्रीतिमांश्च मार्गश्चास्तु सुखप्रदः।

तत्सत्० आत्मनः कायिकवाचिकमानसिकपापनिवारणार्थं मुक्तिप्राप्त्यर्थं० अमरनाथयात्रासाख्यर्थं तृणपादुका, उपानत्, यष्टिः, ददानि ३।

अथ बहुरूपगर्भस्तोत्रम् ।

ॐ स्वच्छन्दभैरवाय नमः। ब्रह्मादिकारणातीतं स्वशक्त्यानन्दनिर्भरम्। नमामि परमेशानं स्वच्छन्दं वीरनायकम् ॥१॥ ओंत्रिपञ्चनयनं देवं जटामुकुटमण्डितम्। चन्द्रकोटिप्रतीकाशं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ॥२॥ पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं सर्पगोनासमण्डितम्। वृश्चिकैरग्निवर्णाभैर्हारेण तु विराजितम् ॥३॥ कपालमालाभरणं खड्गखेटकधारिणम्। पाशाङ्कुशधरं देवं शरहस्तं पिनाकिनम् ॥४॥ वरदाऽभयहस्तं च मुण्डखट्वाङ्गधारिणम्। वीणाडमरूहस्तं च घण्टाहस्तं त्रिशूलिनम् ॥५॥ वज्रदण्डकृताटोपं परश्वायुधहस्तकम्। मुद्गरेण विचित्रेण धृतेन तु विराजितम् ।६। सिंहचर्मपरीधानं गजचर्मोत्तरीयकम्। अष्टादशभुजं देवं नीलकण्ठं सुतेजसम् ॥७॥ ऊर्ध्ववक्त्रं महेशानि स्फटिकाभं विचिन्तयेत्। आपीतं पूर्ववक्त्रं तु नीलोत्पलदलप्रभम् ॥८॥ दक्षिणं तु विजानीयाद्वामं चैव विचिन्तयेत्। दाडिमीकुसुमप्रख्यं कुङ्कुमोदकसन्निभम् ॥६॥ चन्द्रार्बुदप्रतीकाशं पश्चिमं तु विचिन्तयेत्। स्वच्छन्दभैरवं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥१०॥ ध्यायेद्धै यस्तु युक्तात्मा क्षिप्रं सिद्ध्यति मानवः। पूर्वं या सा मया ख्याता ह्यघोरा शक्तिरुत्तमा ॥११॥ यादृशं भैरवं रूपं तस्यास्तादृशमेव हि। भैरवं पूजयित्वा तु तस्योत्सङ्गगतां स्मरेत् ॥१२॥ ईषत्करालवदनां गम्भीरविपुलस्वनाम्। प्रसन्नास्यां सदा ध्यायेत् भैरवीं विस्मितेक्षणाम् नौम्यहं तां परब्रह्ममहिषीं चित्स्वरूपिणीम्। ब्रह्मादिकारणातीतां परानन्दमयीं शिवाम् ।१३। चन्द्रकोटिसमानाभं चन्द्रमौलिं जटाधरं। वराभयत्रिशूलासिकरं कामेश्वरं भजे।१४। विश्वातीतं विश्वमयं भैरवाष्टकसंयुतम्। सकलं निष्कलं शान्तं वन्दे स्वछन्द भैरवम ॥१५॥ सुशान्तं निष्कलं

शुद्धं सर्वव्यापि निरञ्जनं। चिद्वैघानन्दगहनं तेजः सर्वाश्रयं भजे ।१६। कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्। पप्रच्छ प्रणता देवी भैरवं विगतामयम् ॥१७॥ "श्रीदेव्युवाच" प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु समयोल्लङ्घनेषु च। महाभयेषु घोरेषु तीव्रोपद्रवभूमिषु ॥१८॥ च्छिद्रस्थानेषु सर्वेषु सदुपायं वद प्रभो। येनायासेन रहितो निर्दोषश्च भवेन्नरः ।१६। "श्रीभैरवःउवाच" शृणु देवी परं गुह्यं रहस्यं परमाद्भुतम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखनिवारणम् ॥२०॥ प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु तीव्रेष्वऽपि विमोचनम्। सर्वच्छिद्रापहरणं सर्वार्तिविनिवारकम् ॥२१॥ समयोल्लङ्घने घोरे जपादेव विमोचनम्। भोगमोक्षप्रदं देवि सर्वसिद्धिफलप्रदम् ॥२२॥ शतजाप्येन शुद्ध्यंति महापातकिनोऽपि ये। तदर्धं पातकं हन्ति तत्पादेनोपपातकम् ॥२३॥ कायिकं वाचिकं चैव मानसं स्पर्शदोषजम्। प्रमादादिच्छया वाऽपि शतजाप्येन शुद्ध्यति ॥२४॥ यागारम्भे च यागान्ते पठितव्यं प्रयत्नतः। श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् ॥२५॥ नित्ये नैमित्तिके काम्ये परस्याप्याऽत्मनोऽपि वा निश्छिद्रकरणं प्रोक्तं स्वभावपरिपूरणम् ।२६। द्रव्यहीने मन्त्रहीने यज्ञयोगविवर्जिते भक्तिश्रद्धाविरहिते शुद्धिशून्ये विशेषतः ॥२७॥ मनोविक्षेपदोषे च विलोपे पशुवीक्षिते। विधिहीने प्रमादे च जप्तव्यं सर्वकर्मसु ॥२८। नाऽतः परतरो मन्त्रो नातः परतरा स्तुतिः। नातः परतरा काचित्सन्ध्यक्प्रत्यङ्गिरा प्रिये ॥२६॥ इयं समयविद्यानां राजराजेश्वरीश्वरि। परमाऽप्यायनं देवि भैरवस्य प्रकीर्तितम् ॥३०॥ प्रीणनं सर्वदेवानां सर्वसौभाग्यवर्धनम्। स्तवराजमिमं पुण्यं शृणुष्वाऽवहिता प्रिये ।३१। ("अस्य श्रीबहुरूपभट्टारकस्तोत्रस्य, श्रीवामदेव ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीबहुरूपभट्टारको देवता, आत्मनो० चतुर्वर्गसि[illegible] विनियोगः अथ न्यासः। अघोरेभ्यः सर्वात्मने हृदय (अङ्गुष्ठा) अथ घोरेभ्यो [illegible] शिर० (तर्जनी) घोरघोरतरेभ्यश्च ज्वलिन्यै शिखा० (मध्यमा) सर्वतः शर्व सर्वेभ्यः पिङ्गलाय कवचाय० (अनामिका०) ॐ जुं सः ज्योतीरूपाय नेत्राभ्यां (कनिष्ठ) नमस्ते रुद्ररूपेभ्यो दुर्भेद्याय महापाशुपतास्त्राय अस्त्राय फट् (करतल) नमः। मूलमन्त्रेण प्राणायाम। अथ ध्यानम्।") वामे खेटकपाशशार्ङ्ग विलसद्दण्डं च वीणापिटके बि[illegible] ध्वजमुद्गरौ स्वनिभदे त्र्यङ्कं कुठारं करे। दक्षेस्यऽङ्कुशकन्दलेषुडमरून्व[illegible]त्रिशूलाभयात्रुद्रस्थं शरवक्त्र[illegible]न्दुधवलं स्वच्छन्दनाथं स्तुमः। ॐ बहुरूपाय विद्महे कोटराक्षाय धीमहि। तन्नोऽघोरः प्रचोदयात् ।३। (मूलं। अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः शर्व सर्वेभ्यो

